मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 58 ●वर्ष 7, अंक 3 ● मई 2017 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

स्त्रियों को वास्तविक आज़ादी की राह पर आगे बढ़ाया अक्टूबर क्रान्ति ने 13

एमसीडी चुनावों में 'क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा' की भागीदारी : एक राजनीतिक समीक्षा व समाहार 9

बैंक कानून में संशोधन अध्यादेश : हज़ारों करोड़ कर्ज़ लेकर डकार जाने वालों की भरपाई का बोझ जनता पर 16

मोदी सरकार के तीन वर्ष : घटते रोज़गार, बढ़ती महँगाई, अधिकारों पर बढ़ते हमले

मेहनतकश साथियो, सावधान! श्रम क़ानूनों में "सुधार" के नाम पर सौ साल के संघर्षों से हासिल अधिकार छीनने की तैयारी में है सरकार

सम्पादक मण्डल

मोदी सरकार के तीन वर्ष पूरे होने पर फ़र्ज़ी सर्वेक्षणों और कॉरपोरेट घरानों के पालतू मीडिया के ज़रिये माहौल बनाया जा रहा है कि देश की भारी आबादी सुखी और प्रसन्न है और सरकार को दुआएँ दे रही है। मगर सच्चाई सभी जानते हैं। लाख छिपाने के बाद भी यह कड़वा सच छिप नहीं रहा है कि साफ़्टवेयर इंजीनियरों से लेकर दिहाड़ी मज़दूरों तक लाखों की संख्या में बेरोज़गार हो रहे हैं। हर साल दो करोड़ रोज़गार देने के चुनावी जुमले के बावजूद सच यह है कि पिछले तीन सालों से रोज़गार पैदा होने की दर घटते-घटते नहीं के बराबर पहुँच गयी है। बेकाबू महँगाई ने लोगों का जीना हराम कर रखा है, भले ही टीवी चैनलों के लिए यह कोई ख़बर न हो। एक के बाद मेहनतकशों के अधिकारों पर हमले किये जा रहे हैं ताकि इस सरकार के आक़ा, देशी-विदेशी पूँजीपति बेरोकटोक उन्हें लूट सकें। देश की जनता के मेहनत और प्राकृतिक संसाधनों को लूटकर तिजोरियाँ भरने के लिए देशी-विदेशी कम्पनियों को खुली छूट देने में पिछली सभी सरकारों के रिकॉर्ड को पूरी नंगई से तोड़ने पर यह सरकार आमादा है। अर्थव्यवस्था चरमराई हुई है, खेती के संकट ने छोटे किसान और खेतिहर मज़दूरों के लिए दो जून की रोटी जुटाना मुश्किल कर दिया है, मगर देश में "विकास" लगातार जारी है। यह किसका विकास है, समझना मुश्किल नहीं है।

इसी सच्चाई पर पर्दा डालने और इससे ध्यान भटकाने के लिए तमाम तरह के झूठे मुद्दे उभारे जा रहे हैं और आने वाले कठिन समय में लोग एकजुट होकर आवाज़ न उठा सकें इसलिए उन्हें जाति-धर्म, गाय-मन्दिर-मस्जिद आदि-आदि के नाम पर बाँटा और लड़ाया जा रहा है। लोग बेमतलब के सवालों पर आपस में लड़ने में लगे रहें तो सरकार को उनकी जेब और गर्दन काटने की तैयारी करने में आसानी हो जाती है।

नरेन्द्र मोदी को गद्दी पर बिठाने के लिए हज़ारों करोड़ ख़र्च करने वाले तमाम थैलीशाह लगातार यह माँग करते रहे हैं कि मोदी सरकार आर्थिक "सुधार" की गति और तेज़ करे। सुधार से उनका सबसे पहला मतलब होता है कि मज़दूरों को और अच्छी तरह निचोड़ने के रास्ते में बची-खुशी बन्दिशों को भी हटा दिया जाये। मोदी सरकार इस माँग को पूरा करने में जी-जान से जुटी हुई है।

श्रम मंत्रालय संसद में छह विधेयक पारित कराने की कोशिश में है। इनमें चार विधेयक हैं – बाल मज़दूरी (निषेध एवं विनियमन) संशोधन विधेयक, बोनस भुगतान (संशोधन) विधेयक, छोटे कारखाने (रोज़गार के विनियमन एवं सेवा शर्तें) विधेयक और कर्मचारी भविष्यनिधि एवं विविध प्रावधान विधेयक। इसके अलावा, 44 मौजूदा केन्द्रीय श्रम क़ानूनों को ख़त्म कर चार संहिताएँ बनाने का काम जारी है, जिनमें से दो – मज़दूरी पर श्रम संहिता और औद्योगिक सम्बन्धों पर श्रम संहिता – पहले पेश की जा चुकी हैं और तीसरी – सामाजिक सुरक्षा पर श्रम संहिता – का मसौदा पिछले मार्च में जारी किया गया। कहने के लिए श्रम क़ानूनों को तर्कसंगत और सरल बनाने के लिए ऐसा किया जा रहा है। लेकिन इसका एक ही मकसद है, देशी-विदेशी कम्पनियों के लिए मज़दूरों के श्रम को सस्ती से सस्ती दरों पर और

(पेज 5 पर जारी)

अर्थव्यवस्था चकाचक है तो लाखों इंजीनियर नौकरी से निकाले क्यों जा रहे हैं?

नरेन्द्र मोदी विकास के बड़े-बड़े दावे करते हुए सत्ता में आये थे। देश को ऐसी विकास यात्रा पर ले चलने के सपने दिखाये गये थे जिसमें करोड़ों रोज़गार पैदा होंगे। मगर पिछले 3 साल में गौरक्षक दलों, लम्पट वाहिनियों और स्वयंभू एंटी-रोमियो दस्तों आदि के अलावा नये रोज़गार कहीं पैदा होते नहीं दिख रहे हैं। उल्टे , आईटी जैसे जिन क्षेत्रों के लोग अपने को बहुत सुरक्षित और देश के बाकी अवाम से चार हाथ ऊपर समझते थे, उनके ऊपर भी गाज गिरनी शुरू हो गयी है।

पिछले कुछ महीनों में देश की सबसे बड़ी 7 आईटी कम्पनियों से हज़ारों इंजीनियरों और मैनेजरों को निकाला जा चुका है। प्रसिद्ध मैनेजमेंट कन्सल्टेंट कम्पनी मैकिन्सी की रिपोर्ट के अनुसार अगले 3 सालों में हर साल देश के 2 लाख साफ्टवेयर इंजीनियरों को नौकरी से निकाला जायेगा। यानी 3 साल में 6 लाख। ऐसा भी नहीं है कि केवल आईटी कम्पनियों से ही लोग निकाले जा रहे हैं। सबसे बड़ी इंजीनियरिंग कम्पनियों में से एक लार्सेन एंड टुब्रो (एल एंड टी) ने भी पिछले महीने एक झटके में अपने 14,000 कर्मचारियों को बाहर का रास्ता दिखा दिया। ये तो बड़ी और नामचीन कम्पनियों की बात है, लेकिन छोटी-छोटी कम्पनियों से भी लोगों को निकाला जा रहा है। आईटी सेक्टर की कम्पनियों की विकास दर में भयंकर गिरावट है। जिन्होंने 20 प्रतिशत का लक्ष्य रखा था उनके लिए 10 प्रतिशत तक पहुँचना भी मुश्किल होता जा रहा है। अर्थव्यवस्था की मन्दी कम होने का नाम नहीं ले रही है और नये रोज़गार पैदा होने की दर पिछले एक दशक में सबसे कम पर पहुँच चुकी है।

इसका असर नये इंजीनियरों के लिए रोज़गार के अवसरों पर भी पड़ रहा है। कुछ साल पहले तक आईआईटी के छात्रों के लिए पढ़ाई पूरी होने से पहले ही लाखों की नौकरी पक्की हो जाती थी। मगर आज आईआईटी से निकलने वाले हर तीन में से एक इंजीनियर को ही तुरन्त काम मिल पा रहा है, बहुतों को तो महीनों खाली बैठे रहना पड़ रहा है। उनकी तनख्वाहें भी कम होती जा रही हैं। छोटे इंजीनियरिंग कालेजों और देशभर में थोक भाव से खुले प्राइवेट कालेजों से निकले इंजीनियरों के लिए तो बेरोज़गारी एक बड़ी समस्या बन चुकी है। बहुतों को तो 15-16 हज़ार में छोटी कम्पनियों में खटना पड़ रहा है। थोक भाव से पैदा हुए एमबीए स्नातकों की हालत भी कुछ ऐसी ही है।

कहा जा रहा है कि ऑटोमेशन और नयी टेक्नोलॉजी आने से लोग बेरोज़गार हो रहे हैं। यह केवल पूँजीवाद में ही हो सकता है जहाँ कुशलता और तकनीक का हर नया विकास उन्हीं लोगों के लिए मुसीबत बन जाता है जिन्होंने उसे पैदा किया था। ऑटोमेशन और नयी तकनीकें बहुसंख्यक लोगों के लिए जीना आसान बनाने के बजाय कुछ लोगों के लिए मुनाफ़े बढ़ाने का और बहुसंख्यक लोगों के लिए बेरोज़गारी का सबब बन जाती हैं।

एक दिलचस्प बात यह है कि आईटी क्षेत्र के ये लोग जो पहले ट्रेड यूनियन का नाम सुनते ही गाली देते थे, अब उन्हें अपनी गर्दन पर तलवार पड़ने पर यूनियनों की याद आ रही है। जो लोग पहले बहस किया करते थे कि कम्पनियों को इस बात का पूरा अधिकार है कि वे अपने हिसाब से मज़दूरों को काम पर रखें और निकालें, और 'परफ़ॉरमेंस' ही नौकरी बने रहने का असली आधार होना चाहिए, वही लोग अब यूनियनों से सम्पर्क कर रहे हैं और खुद यूनियन बनाने की कोशिश कर रहे हैं। इस पर यही कहा जा सकता है, 'देर आयद, दुरुस्त आयद।'

(पेज 7 भी देखें)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

पूँजीपतियों के पास दर्जनों अख़बार और टीवी चैनल हैं। मज़दूरों के पास है उनकी आवाज़ 'मज़दूर बिगुल'!
इसे हर मज़दूर के पास पहुँचाने में हमारा साथ दें।

आपस की बात

मज़दूरों को पहले ही श्रम कानूनों के तहत अधिकार नहीं मिल रहे। ऊपर से श्रम कानूनों को सरल बनाने के नाम पर कानूनी तौर पर भी श्रम अधिकार खत्म करने की कोशिश हो रही है। सबसे पहले राजस्थान की भाजपा सरकार ने श्रम अधिकारों पर बड़ा हमला किया। पहले कानून था कि 100 से अधिक श्रमिकों को रोजगार देने वाली कम्पनी को बन्द करने से पहले श्रम विभाग से मंजूरी लेनी होती थी। राजस्थान सरकार ने इसे बढ़ाकर 300 कर दिया। यह तो बस शुरुआत थी। इसके बाद कई राज्यों की सरकारों ने मज़दूरों के अधिकारों पर ऐसे हमले तेज कर दिये और केन्द्र सरकार ने मज़दूर हितों पर पूरी बमबारी की तैयारी कर ली है। पूँजीवादी लेखकों से इसके पक्ष में लेख लिखवा कर श्रम अधिकारों को कानूनी तौर पर खत्म करने का माहौल बनाया जा रहा है। ये पत्रकार लिखते हैं कि श्रम कानूनों को ढीला करने से रोजगार बढ़ेंगे, मज़दूरों का भला होगा। कुछ लोग मनरेगा और दूसरी कल्याण- कारी योजनाओं पर सरकारी खर्च को लेकर बहुत हायतौबा मचाते हैं लेकिन जब पूँजीपतियों को लाखों करोड़ की सब्सिडी और टैक्स में छूट दी जाती है, तो उनके मुँह में दही जम जाता है। ये पत्रकार और भाड़े के लेखक श्रम कानूनों में तेजी से बदलाव के लिए लगातार माहौल बना रहे हैं और लोगों को समझाना चाहते हैं कि यह मजदूरों के हित में है। ये बातें पूरी तरह मुनाफाखोरों का हित साधने के लिए हैं। मज़दूर हित की बातें तो महज दिखावा है।

1990 के दशक में कांग्रेस सरकार नवउदारवादी नीतियाँ लेकर आई और मज़दूरों को निचोड़ने के लिए देशी-विदेशी पूँजीपतियों को खुली छूट दी गई। नवउदारवादी नीतियों के तहत श्रम कानूनों में बदलाव होने लगे। श्रम विभागों में अफसरों-कर्मचारियों की कमी कर दी गई। श्रम कानून तो पहले ही बहुत लचीचे थे और इनका पहले ही बहुत उलण्घन होता था। लेकिन अब पूँजीपतियों को श्रम कानूनों की धज्जियाँ उड़ाने की और भी बड़े स्तर पर खुली छूट दी गई। उससे भी आगे बढ़कर भाजपा सरकार यह कुकर्म करने पर लगी हुई है। नवउदारवादी नीतियों का नतीजा अमीर-गरीब की खाई अत्याधिक बढ़ने में निकला। मज़दूरों की जिन्दगी बहुत बदतर हो गई। आमदन में बहुत कटौती हुई। बेरोजगारी बहुत बढ़ गई।

आज कारखानों में हालत यह है कि अधिक से अधिक उत्पादन के लिए मज़दूर पर बहुत दबाव डाला जाता है। मज़दूरों के साथ होने वाले हादसे बहुत बढ़ गए हैं। उँगली-हाथ कटना आम बात बन चुकी है। मुआवजा भी नहीं मिलता है। न्यूनतम वेतन भी नहीं मिलता। सिंगल रेट में ओवर टाईम काम करवाया जाता है। फण्ड-बोनस लागू नहीं है। झुनवाला जैसे लेखकों को यह सब दिखाई क्यों नहीं देता। उन्हें दिखाई तो सब देता है लेकिन पूँजीपतियों का पक्ष लेते हुए वह सच्चाईयों पर परदा डालने की कोशिश करते हैं। लेकिन इन सच्चाईयों को पूँजीपतियों का प्रचार कभी भी ढँक नहीं सकता।

बिगुल में श्रम कानूनों के मुद्दे पर काफी अच्छी सामग्री छपी है जो पूँजीपतियों के दावों पोल खोलती है। इससे मज़दूरों को पूँजीपतियों की चालों को समझने में मदद मिलती है। मज़दूर वर्ग को अपना क्रान्तिकारी प्रचार मज़बूती से संगठित करना होगा ताकि पूँजीपति वर्ग के झूठे प्रचार का मुकाबला किया जा सके। मज़दूर बिगुल इसमें अच्छी भूमिका अदा कर रहा है।

– एक मज़दूर, लुधियाना।

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" **- लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

मज़दूर बिगुल के लिए अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव आप इन तरीक़ों से भेज सकते हैं:

डाक से भेजने का पता: **मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**
ईमेल से भेजने का पता: **bigulakhbar@gmail.com**

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं:
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीआर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता:
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण: Mazdoor Bigul
खाता संख्या: 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200
पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता: वार्षिक: 70 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन: 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं:

फ़ोन: 0522-4108495, 9721481546
ईमेल: bigulakhbar@gmail।com
फ़ेसबुक: www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 8853093555
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति - रु. 5/- वार्षिक - रु. 70/- (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता - रु. 2000/-

आइसिन ऑटोमोटिव हरियाणा प्रा. लि. (आई.एम.टी., रोहतक, हरियाणा) के मज़दूर कम्पनी प्रबन्धन के शोषण के ख़िलाफ़ संघर्ष की राह पर

विगत 3 मई से 'आइसिन ऑटोमोटिव हरियाणा प्रा. लि.' के मज़दूर 'आइसिन ऑटोमोटिव हरियाणा मज़दूर यूनियन' के बैनर तले कम्पनी प्रबन्धन की मनमानी के ख़िलाफ़ सड़क पर हैं। ज्ञात हो कि आइसिन ऑटोमोटिव हरियाणा प्रा. लि. एक जापानी कम्पनी है, जिसके एमडी मकत्तो साइतो हैं तथा प्रदीप, रमणीक विकास और विक्रम इसके एचआर मैनेजर व स्थानीय प्रबन्धक हैं। यह कम्पनी मारुती, हौण्डा और टोयोटा कम्पनियों की वेण्डर कम्पनी है जोकि 'डोर लॉक', 'इनसाइड-आउटसाइड हैण्डल' निर्मित करती है। कम्पनी 2011 में शुरू हुई थी। इसमें क़रीब 800 मज़दूर काम करते हैं जिनमें 60-70 स्त्री मज़दूर भी शामिल हैं। यहाँ पर मज़दूरों को बेहद कम वेतन पर खटाया जाता है। 'कैजुअल' मज़दूरों को कुल 6,800 रुपये मिलते हैं, और ट्रेनी को 8,620 तथा कहने के लिए क़रीब 270 मज़दूर पक्के हैं किन्तु उन्हें भी वेतन 8,000 से 10,000 के क़रीब ही मिलता है, जबकि हरियाणा सरकार द्वारा तय उच्च कुशल मज़दूर का न्यूनतम वेतन 10,568 है। कम्पनी में हरियाणा समेत देश के अलग-अलग राज्यों से आये हुए मज़दूर काम करते हैं। अब सोचा जा सकता है कि महँगाई के इस ज़माने में थोड़े से वेतन से क्या तो अपना गुज़ारा होता होगा और क्या अपने ऊपर निर्भर घर वालों की मदद की जाती होगी।

कम्पनी में लम्बे समय से काम कर रहे और संघर्ष की अगुवाई कर रहे जसबीर हुड्डा, अनिल शर्मा, उमेश, सोनू प्रजापति तथा अन्य मज़दूरों ने बताया कि कम्पनी में मज़दूरों के साथ लगातार बुरा व्यवहार किया जाता है। भाड़े के गुण्डों जिन्हें सभ्य भाषा में बाउंसर कह दिया जाता है और प्रबन्धन के लोगों द्वारा गाली-गलौज करना और गधे तक जैसे शब्दों का इस्तेमाल करना आम बात है। काम कर रही स्त्री मज़दूरों के साथ भी ज़्यादतियाँ और छेड़छाड़ तक के मामले सामने आये, किन्तु संज्ञान में लाये जाने पर प्रबन्धन के उच्च अधिकारियों द्वारा इन्हें आम घटना बताकर भूल जाने की बात कही गयी। मज़दूरों ने अपनी मेहनत के बूते कम्पनी को आगे तो बढ़ाया किन्तु इसका ख़ामियाज़ा मज़दूरों को ही भुगतना पड़ा। शुरुआत में जहाँ एक 'प्रोडक्शन लाइन' पर 25 मज़दूर काम करते थे, वहीं अब उनकी संख्या घटकर 18 रह गयी। पहले जहाँ एक घण्टे में 120 पीस तैयार होते थे, वहीं अब उनकी संख्या 300 तक पहुँच गयी, किन्तु मज़दूरों के वेतन में कोई बढ़ोत्तरी नहीं हुई। कई मज़दूर साथियों के वेतन में तो सालाना 1 रुपये तक की भी बढ़ोत्तरी हुई है। 'बोनस' के नाम पर मज़दूरों को एक माह के वेतन के बराबर राशि देने की बजाय छाता और चद्दरें थमा दी जाती हैं। कम्पनी के कुछ बड़े अधिकारी तो सीधे जापानी हैं तथा अन्य यहीं के देसी लोग हैं, किन्तु मज़दूरों को लूटने में कोई किसी से पीछे नहीं है। यहाँ पर भयंकर वित्तीय अनियमितताएँ दिखाई देती हैं। मज़दूरों से निचोड़े गये पैसे को मालिक से लेकर नीचे मैनेजरों तक की जमात हड़प जाती है। कम्पनी लगातार विस्तारित होती गयी, मैनेजमेण्ट के लोगों की तोंदें लगातार बढ़ती चली गयीं, जो पहले साइकिल पर आता था, उसके पास अब चमचमाती गाड़ी है, किन्तु मज़दूर वहीं के वहीं हैं।

आइसिन के मज़दूरों ने अपने अनुभव से जाना कि तमाम तरह के शोषण से निज़ात पाने का रास्ता अपनी एकजुटता और संघर्ष से होकर जाता है। इसी के मद्देनज़र 'ट्रेड यूनियन एक्ट 1926' के तहत यूनियन के पंजीकरण के लिए फ़ाइल श्रम विभाग में लगायी गयी। यहीं से मज़दूरों के लिए दिक़्क़त होनी शुरू हो गयी। मज़दूरों को सबक़ सिखाने के मक़सद से उन पर ज़बरन तालाबन्दी थोप दी गयी। अपनी क़ानूनी और संविधान सम्मत माँग के उठाये जाने पर विगत 3 मई को कम्पनी प्रबन्धन के द्वारा 20 'ट्रेनिंग' पर काम कर रहे साथियों को बिना किसी अग्रिम 'नोटिस' और पूर्व-सूचना के निकाल बाहर किया गया, जब अन्य मज़दूरों ने अपने 20 साथियों के समर्थन में आवाज़ उठायी तो कम्पनी के प्रबन्धकों द्वारा उन्हें 'अण्डर-टेकिंग' के नाम पर एक 'फॉर्म' थमा दिया जिसमें साफ़ तौर पर कहा गया था कि कम्पनी में काम करते समय कोई भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष माँग नहीं रखनी होगी और कुल मिलाकर इसका लुब्बेलुबाब यह था कि यदि कम्पनी में काम करना है तो 'बिना कान तक हिलाये' गुलामों की तरह से खटना होगा तथा शोषण के ख़िलाफ़ किसी भी रूप में आवाज़ नहीं उठानी होगी, क़ानूनी अधिकारों के लिए भी अपना मुँह बन्द रखना होगा। कम्पनी प्रबन्धन का यह रवैया आइसिन के मज़दूरों को नागवार गुज़रा और मज़दूरों ने संघर्ष का रास्ता चुनने का संकल्प लिया। सभी पक्के, 'ट्रेनिंग', 'कैजुअल' और ठेके पर काम कर रहे मज़दूरों ने शानदार एकजुटता का प्रदर्शन करते हुए कम्पनी की तानाशाही के सामने सिर झुकाना नामंजूर कर दिया। कम्पनी की मनमानी और अण्डर-टेकिंग को ठोकर मारते हुए मज़दूरों ने कम्पनी गेट पर ही जमे रहने का फ़ैसला लिया। मज़दूर कम्पनी प्रबन्धन की मनमानी के ख़िलाफ़ 3 मई से कम्पनी के गेट पर दिन-रात डटे हुए हैं। 3 तारीख़ से लेकर 14 तारीख़ तक यानी यह रिपोर्ट लिखे जाने तक न तो प्रबन्धन ने कुछ सुध ली है और न ही स्थानीय प्रशासन व सरकार ने। एसडीएम, श्रम विभाग से लेकर डीसी तक कम्पनी प्रबन्धन के सामने नतमस्तक दिखाई दे रहे हैं। यही नहीं रोहतक के भाजपाई विधायक मनीश ग्रोवर से लेकर कांग्रेसी सांसद दीपेन्द्र हुड्डा तक मज़दूरों के मसले पर अपने मुँह में दही जमा कर बैठे हैं, मज़दूरों के जायज़ और क़ानूनसम्मत हक़-हुकुक के समर्थन में अपनी ज़बान तक नहीं हिला रहे हैं। यही नहीं तमाम नेता जोकि आरक्षण के समय पर अपने बिलों से बाहर निकलकर लोगों को जाति के आधार पर लड़ाने में एक-दूसरे को पीछे छोड़ने में होड़ लगाते हैं अब कानों में रुई तेल डालकर 'एसी' में सो रहे हैं। भाजपा-नीत एनडीए की सरकार में उद्योग एवं इस्पात मन्त्री बिरेन्द्र सिंह डूमरखाँ जिन्होंने अपने जीवन का लम्बा समय कांग्रेस की सेवा में भी लगाया और जिनके नाना सर छोटूराम आज़ादी के समय इस इलाक़े के ग़रीब किसानों के क़र्ज़े माफ़ करवाते घूमा करते थे तथा जिनके नाम पर उक्त मन्त्री महोदय आज तक अपनी चुनावी गोट लाल करते आये हैं, ने तो बड़ी ही बेशर्मी के साथ कहा कि 'हम तो बड़ी मुश्किल से बाहर की कम्पनियों को यहाँ लाते हैं और तुम लोग हड़ताल करके बैठ जाते हो'। रोहतक में जब किसानों से ज़मीनें छीनकर आइएमटी खुली थी, तो युवाओं को इज़्ज़त के साथ रोज़गार देने का वायदा किया गया था किन्तु अब यहाँ मज़दूरों की श्रम शक्ति का ज़बरदस्त शोषण हो रहा है तथा दूसरी ओर कम्पनी प्रबन्धन से लेकर मालिकों का पूरा वर्ग मालामाल हो रहा है। साफ़ तौर पर प्रशासन और सरकार के लग्गू-भग्गू कम्पनी प्रबन्धन और मालिकान के सामने पूँछ हिला रहे हैं और ऐसा वे जिस कारण से कर रहे हैं, यह बताने की भी ज़रूरत नहीं है। चिलचिलाती धूप में सभी मज़दूरों को खुले आसमान के नीचे ही बैठना पड़ता है, टेण्ट तक की अनुमति मज़दूरों को नहीं दी गयी जबकि कुछ ही दूरी पर पुलिस और कम्पनी के बाउन्सर टेण्ट के नीचे कूलर की ठण्डी हवा खा रहे हैं। भयंकर गर्मी और लू के चलते 20-25 मज़दूरों की हालत ख़राब हो गयी जिन्हें रोहतक पीजीआई दाखिल कराना पड़ा। परेशान करने के मक़सद से रात को सड़क की 'लाइट' तक को बन्द कर दिया जाता है। कम्पनी संघर्ष शुरू होने के अगले दिन ही 'कोर्ट' से 'स्टे ऑर्डर' ले आयी जिसके कारण अगुआ मज़दूरों को कम्पनी से 400 मीटर की दूरी पर बैठना पड़ रहा है। महिला मज़दूरों तक के लिए स्थानीय प्रशासन के द्वारा 'मोबाइल शौचालय' तक की भी व्यवस्था नहीं की गयी। संघर्ष में शामिल मज़दूरों के घर पर फ़ोन किया जा रहा है, चिट्ठियाँ भेजी जा रही हैं, जिनका मक़सद लालच देना और डराना-धमकाना है। अलग-अलग पीछा करके भी डराया-धमकाया जा रहा है। यह ख़बर लिखे जाने तक और संघर्ष के 12 दिन तक श्रम विभाग, कम्पनी प्रबन्धन और स्थानीय प्रशासन के साथ 14-15 वार्ताएँ हो चुकी हैं किन्तु कम्पनी प्रबन्धन अपने तानाशाही रुख़ पर क़ायम है। 14 तारीख़ को यूनियन का पंजीकरण रद्द कराने की बात कहकर प्रबन्धन के द्वारा एक नया शिगुफ़ा छोड़ा गया ताकि मज़दूर संघर्ष में टूट जायें। किन्तु प्रबन्धन का यह पैंतरा भी नहीं चल पाया। यूनियन का रजिस्ट्रेशन नम्बर जो कि आने ही वाला था, प्रबन्धन उसे रद्द कराने के लिए तमाम हथकण्डे अपना रहा है।

तमाम जन संगठन, रोहतक व आस-पास की यूनियनें और ऑटोमोबाइल सेक्टर की ट्रेड यूनियनें मज़दूरों के समर्थन में आ रही हैं। धरना एवं संघर्ष स्थल पर बिगुल मज़दूर दस्ता के साथी भी लगातार आइसिन कम्पनी के मज़दूरों के संघर्ष में शामिल हैं तथा हर सम्भव मदद कर रहे हैं। ऑटोमोबाइल सेक्टर आज पूरी तरह से सुलग रहा है। बिगुल मज़दूर दस्ता के साथी मज़दूरों के साथ यह बात लगातार साझा कर रहे हैं कि हमें फ़ैक्टरी आधार पर ट्रेड यूनियनें संगठित करने के साथ-साथ सेक्टर गत ट्रेड यूनियन बनाने के प्रयास भी छेड़ देने चाहिए। ऑटोमोबाइल सेक्टर के मज़दूरों की सेक्टर के आधार पर इलाक़ाई ट्रेड यूनियन आज वक़्त की ज़रूरत है। 'फॉरडिस्ट असेम्बली लाइन' के टूटने और 'ग्लोबल असेम्बली लाइन' के बनने के साथ ही अब मज़दूर अपनी इलाक़ाई और सेक्टरगत यूनियनें बनाकर ही अपने संघर्षों को बेहतर ढंग से न केवल लड़ सकते हैं बल्कि इनमें जीतने की सम्भावनाएँ भी अधिक हैं। मालिक वर्ग ने आज उत्पादन को एक फ़ैक्टरी में करने कि बजाय बिखरा दिया है। पहले जहाँ एक ही छत के नीचे पूरा उत्पाद बनता था तथा 'असेम्बलिंग' भी वहीं होती थी, वहीं आज पूरा उत्पाद एक जगह बनने की बजाय टुकड़ों-टुकड़ों में बनता है तथा 'असेम्बलिंग' भी कहीं और होती है। इसीलिए आज सेक्टरगत यूनियनें हमारे संघर्ष को ज़्यादा कारगर ढंग से लड़ पायेंगी तथा इसका मतलब यह भी नहीं है कि हम फ़ैक्टरी के आधार पर यूनियन न बनायें बल्कि ज़रूर बनायें बल्कि आगे चलकर सेक्टरगत यूनियन हमारे स्थानीय संघर्षों में मददगार ही साबित होंगी। फ़ैक्टरीगत यूनियनों के साथ-साथ गुड़गाँव, मानेसर, धारूहेड़ा, बावल, ख़ुशखेड़ा, भिवाड़ी, टपुकड़ा, अलवर से लेकर बहादुरगढ़, रोहतक आदि तक की ऑटोमोबाइल की पूरी पट्टी की एक सेक्टरगत यूनियन आज समय की माँग है। ज़्यादातर मज़दूर युवा और पढ़े-लिखे हैं तथा बात को न केवल समझ रहे हैं, बल्कि शिद्दत से सेक्टरगत इलाक़ाई यूनियन की बात पर सहमत भी हो रहे हैं।

संघर्ष अभी चल ही रहा है। मालिक और मैनेजमेण्ट फ़िलहाल तक मज़दूरों को थकाने के मूड में नज़र आ रहे हैं। किन्तु आन्दोलन की गर्मी मई माह की भयंकर गर्मी और लू पर भारी पड़ रही है। आइएमटी परिसर से लेकर शहर भर में विरोध जुलूस निकाले जा रहे हैं। रोहतक की फ़िज़ाएँ मज़दूरों के नारों से गूँज रही हैं। मज़दूर अपनी सामूहिक रसोई चला रहे हैं जिसमें कम्पनी के साथी अपने हाथों से भोजन बनाने और परोसने का काम कर रहे हैं। मज़दूरों के महान नेता लेनिन ने कहा था कि हड़ताल मज़दूरों की प्राथमिक पाठशाला है। मज़दूरों ने बताया कि वे अपनी इस प्राथमिक पाठशाला से बहुत कुछ सीख रहे हैं, अपनी एकजुटता और ताक़त का अहसास कर रहे हैं। आन्दोलन में ग़लत प्रवृत्तियों पर लगातार बात भी हो रही है। आसपास के लोग, जनसंगठन और यूनियनें संघर्ष की आर्थिक मदद कर रहे हैं। आन्दोलन आगे क्या मोड़ लेगा, यह बात अभी तक समय के गर्भ में है।

- बिगुल संवाददाता
रोहतक (हरियाणा)

मुम्बई के ग़रीबों के फेफड़ों में ज़हर घोल रहे बायोवेस्ट ट्रीटमेण्ट प्लाण्ट को बन्द करवाने के लिए शुरू हुआ संघर्ष

मुम्बई, देश की आर्थिक राजधानी, जहाँ बसते हैं अम्बानी जैसे अमीर, बॉलीवुड के सितारें और भी बहुत सारे अमीरजादे। मुम्बई में स्मार्ट सिटी भी बन रही है, जहाँ ऐसी ऐसी सुविधाएँ हैं जिसके बारे में एक मध्यमवर्गीय व्यक्ति भी कल्पना नहीं कर सकता है। इसी मुम्बई में मुम्बई चलाने वाले, उसका सारा काम करने वाले लोग भी बसते हैं पर वो ज़्यादातर समय ख़ामोश ही रहते हैं या फिर ख़ामोश दिखाये जाते हैं। मानखुर्द, गोवण्डी जैसे इलाक़ों से बना एम-ईस्ट वार्ड भी एक ऐसी ही जगह है। मुम्बई के सबसे ग़रीब लोग यहाँ रहते हैं। लगभग दस लाख की संख्या में। सुविधाओं का तो यहाँ नामोनिशान भी नहीं है। उल्टा फेफड़ों में व पानी में ज़हर घोलने के पूरे इन्तज़ाम हैं।

देवनार डम्पिग ग्राउण्ड है जिसमें पूरी मुम्बई का कचरा फेंका जाता है। गाहे-बगाहे वहाँ आग लगती रहती है व हानिकारक तत्व हवा में घुलते रहते हैं। पूरी मुम्बई का इकलौता बायोमेडिकल वेस्ट ट्रीटमेण्ट प्लाण्ट भी यहीं है। सुबह उठते समय हो या रात को सोते समय, घाटकोपर-मानखुर्द लिंक रोड पर बने इस बायोवेस्ट ट्रीटमेण्ट प्लाण्ट का गाढ़ा धुआँ देखना मानखुर्द, गोवण्डी के लोगों की दिनचर्या का हिस्सा बन चुका है। मुम्बई के सरकारी व निजी अस्पतालों, डिस्पेंसरियों व अन्य जगहों से निकला बायोमेडिकल कचरा यहाँ जलाया जाता है। इसकी वजह से ये प्लाण्ट 24 घण्टे ज़हर उगलता है। फेफड़ों में घुसे इसके धुएँ के कारण इलाक़े के लोग टीबी, अस्थमा जैसी अनेक साँस की बीमारियों के शिकार हो रहे हैं। इस सम्भावना से इंकार नहीं किया जा सकता है कि इसी के कारण इलाक़े में तमाम असमय मौतें भी हुई हों, मगर उनका असल कारण पता न चला हो। ऐसा नहीं है कि शासन-प्रशासन को इसकी जानकारी नहीं है या फिर उन्हें प्रदूषण का स्तर मालूम नहीं है। पर ग़रीबों के मरने पर उन्हें कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। इसीलिए वे इसे यहाँ से हटाकर कहीं और नहीं ले जा रहे।

इस प्लाण्ट की कहानी 2001 में शुरू होती है। उस समय महाराष्ट्र प्रदूषण नियन्त्रण आयोग ने सभी अस्पतालों को निर्देश दिया कि वे अपने यहाँ से निकलने वाले कचरे का सही तरीक़े से निपटारा करें। अस्पतालों ने अपने स्तर पर कुछ नहीं किया। क्योंकि इसके लिए उन्हें ख़र्चा करना पड़ता। और हम अच्छी तरह से जानते हैं कि तमाम प्राइवेट अस्पतालों के लिए पैसा ही सबकुछ है। इसके लिए वे किसी की जान तक भी ले सकते हैं। इसके बाद बीएमसी ने शिवडी में एक ट्रीटमेण्ट प्लाण्ट शुरू करवाया। इस प्लाण्ट में यहीं की तरह कचरा जलाया जाता था। शिवडी में ज़्यादातर अमीर आबादी रहती है जिसकी वजह से उसे वहाँ से हटाने की माँग शुरू हो गयी। 2009 में इसे हटाते वक़्त प्रशासन का यही कहना था कि इसे प्रदूषण के कारण हटाया जा रहा है।

जब प्रदूषण की वजह से उसे वहाँ से हटाया गया तो दूसरे रिहायशी इलाक़े में लगाने का क्या औचित्य बनता है? अगर शिवडी के लोगों को ये ज़हरीला धुआँ बीमार कर रहा था तो मानखुर्द-गोवण्डी में आते ही क्या ये अमृत बन गया?

असल बात यह है कि शासन-प्रशासन में बैठे अमीरों के इन प्रतिनिधियों के लिए मेहनतकशों की जान की कोई क़ीमत नहीं है। यही कारण है कि 10

लाख की घनी आबादी के बीचों-बीच ये ज़हर का केन्द्र 2009 से शुरू है। मुम्बई उच्च न्यायालय द्वारा बनायी गयी एक कमेटी के सदस्य डॉ. सन्दीप राणे ने जब इस प्लाण्ट का आकस्मिक निरीक्षण किया था तो उन्होंने जो कुछ देखा, वो दिल दहलाने वाला था। उनके अनुसार, यहाँ पर कचरे को अलग-अलग कर उसकी प्रकृति के अनुसार नहीं निपटाया जाता, बल्कि एक ही साथ जला दिया जाता है। प्लास्टिक की सीरिंज, शरीर के अंग, ख़ून सनी पट्टियाँ सब एक ही साथ डालकर जलाया जाता है व वायु प्रदूषण को मापने का कोई भी यन्त्र कम्पनी ने नहीं लगा रखा है। इलाक़े के लोगों ने ख़ुद देखा है कि कैसे प्लाण्ट के पीछे बने नाले में कम्पनी के कर्मचारी बहुत सारा कचरा बहा देते हैं। इसके कारण न सिर्फ़ हवा ज़हरीली होती है, बल्कि भूजल भी ज़हरीला होता जाता है। डॉ. राणे के अनुसार ये प्लाण्ट रिहायशी इलाक़ों से बहुत दूर होना चाहिए, क्योंकि इससे निकलने वाली प्रदूषक गैसें साँस की बीमारियों से लेकर अन्य कई गम्भीर बीमारियाँ फैलाती हैं, जो मौत का कारण भी बन सकती हैं। डाईऑक्सिन नाम का एक ज़हर इससे लगातार निकलता है जिससे हृदय की बीमारियाँ, शरीर वृद्धि रुकने की बीमारियाँ, आदि होती हैं। इसी मुम्बई में जब लता मंगेशकर के घर के सामने फ्लाईऑवर बनने वाला था तो उन्होंने ये कहकर उसका काम रुकवा दिया था कि इससे वायु प्रदुषण होगा व उनका गला ख़राब हो सकता है। उनके विरोध के कारण वो फ्लाईऑवर कभी नहीं बन पाया। पर हर साल सैकड़ों लोगों की जान ले लेने वाले इस प्लाण्ट को हटाने से रोकने के लिए सरकार-प्रशासन कोई भी क़सर बाक़ी नहीं रखता।

कोई भी ग़रीब मेहनतकश ऐसा नहीं होगा जो ख़ुद अच्छी हवा में साँस नहीं लेना चाहता और अपने बच्चों के बेहतर भविष्य के लिए लड़ना नहीं चाहता, पर जो लोग मुम्बई के सारे बुनियादी काम करते हैं व जिनके कन्धों पर मुम्बई टिकी है, उनके लिए सरकार कोई सुविधा नहीं देती है। दस लाख लोगों की जनसंख्या वाले एम ईस्ट वार्ड में औसत आयु मात्र 39 साल है, जबकि कोलाबा में 60 साल। इसका एक बड़ा कारण यहाँ हो रहा प्रदूषण व अस्पताल की कमी है।

यूँ तो इससे पहले भी इस प्लाण्ट को हटाने के लिए आन्दोलन हुए हैं। पर उन आन्दोलनों की शुरुआत ज़्यादातर चुनावी पार्टियों या फिर एनजीओ ने की थी। इसीलिए वे दिखावेबाज़ी के बाद जल्द ही ख़त्म हो गये। क्योंकि एनजीओं हों या फिर चुनावी पार्टी, उनको फ़ण्डिंग करने का काम बड़े-बड़े उद्योगपति घराने ही करते हैं। जो कम्पनी इस प्लाण्ट को चला रही है, उसका भी हर साल का मुनाफ़ा लगभग 50 करोड़ है। इसलिए नौजवान भारत सभा व बिगुल मज़दूर दस्ता के नेतृत्व में इलाक़े के नौजवानों ने तय किया है कि किसी चुनावी पार्टी या एनजीओ के पिछलग्गू बने बिना ख़ुद स्थानीय गली कमेटियाँ बनाते हुए एक जुझारू आन्दोलन खड़ा करना होगा। पिछले कुछ दिनों से ये आन्दोलन चलाया जा रहा है व आशा है कि जनता की ताक़त के सामने पूँजी की ताक़त झुकेगी और ग़रीबों-मेहनतकशों को भी स्वच्छ हवा का अधिकार मिलेगा।

- सत्यनारायण

हरियाणा में दलित उत्पीड़न के ख़िलाफ़ संयुक्त प्रदर्शन!

हरियाणा के कैथल ज़िले के गाँव में 1 मई को हुई दलित उत्पीड़न की घटना के विरोध में तथा न्याय की माँग को लेकर अखिल भारतीय जाति विरोधी मंच, नौजवान भारत सभा, जन संघर्ष मंच हरियाणा व अन्य जन संगठन व सामाजिक कार्यकर्ताओं ने कैथल लघु सचिवालय पर संयुक्त प्रदर्शन किया। ज्ञात हो कि 1 मई को बालू गाँव में मौजूदा सरपंच व उसके गुण्डा तत्वों द्वारा दलित नौजवानों पर हमला कर दिया गया। इसके पीछे की वजह यह थी कि उन नौजवानों ने सरपंच के दसवीं के दस्तावेज़ों को लेकर एक आरटीआई डाली थी। इस बात को लेकर गाँव के सरपंच ने उन्हें डराने-धमकाने के लिए जातिगत गोलबन्दी करके उन पर हमला बोल दिया, जिसमें कई नौजवान बुरी तरह घायल हो गये तथा दलित बस्ती में तोड़-फोड़ भी की गयी। इस पूरी घटना पर पुलिस ने बेशर्मी से दबंगों का पक्ष लेते हुए एससी/एसटी एक्ट के तहत कोई कार्रवाई नहीं की है। यहाँ तक एफ़आईआर लिखने में काफ़ी आनाकानी की और एफ़आईआर में कमज़ोर धाराएँ लगाकर आरोपियों को बचाने की पूरी कोशिश की है। इस पूरी घटना में कैथल पुलिस प्रशासन का सवर्णवादी रवैया साफ़ उजागर हो रहा है। संयुक्त प्रदर्शन में डीसी संजय जून को ज्ञापन सौंपा गया।

ज्ञापन में ये तीन मुख्य माँगें रखी गयीं: 1) इस घटना के दोषियों - बालू गाँव के सरपंच व अन्य नामजद लोगों को

जल्द से जल्द गिरफ़्तार किया जाये, 2) इस मामले के जाँच अधिकारी डीसीपी सतीश गौतम को हटाकर ये केस किसी दूसरे अधिकारी को सौंपा जाये, 3) इस घटना में घायल हुए लोगों को मुआवज़ा दिया जाये।

अखिल भारतीय जाति विरोधी मंच के अजय ने बताया कि हरियाणा में चाहे हुड्डा सरकार हो या खट्टर सरकार, दलित उत्पीड़न की घटनाएँ लगातार जारी हैं। मिर्चपुर, गोहाना से लेकर भगाणा और अब कैथल, कुरुक्षेत्र और करनाल में बर्बर दलित उत्पीड़न की घटनाएँ भाजपा सरकार की "सामाजिक समरसता" की नौटंकी का पर्दाफ़ाश कर देती हैं। मौजूदा घटना की शुरुआत तब हुई जब गाँव के कुछ दलित युवकों द्वारा मौजूदा सरपंच के दसवीं के प्रमाण-पत्र को जाँचने के लिए आरटीआई लगायी गयी थी। लेकिन सरपंच पक्ष के लोगों ने आरटीआई का जवाब क़ानूनी तरीक़े से न देकर दलित युवकों को डराने-धमकाने की कोशिश की। 1 मई को सरपंच व दबंग जाति के कुछ लोगों ने दलित बस्ती में दलित युवकों को जातिसूचक गालियाँ व जान से मारने की धमकी दी। इसके बाद शुरू हुई हिंसा में दलित बस्ती पर दबंग जाति के लोगों ने भयंकर हमला कर दिया। जिसमें दो दलित युवक गम्भीर रूप से घायल हो गये व आधे दर्जन लोगों को भी चोटें आयीं। घटना के बाद पाँच दलित परिवार भय के कारण गाँव छोड़ चुके हैं। बच्चों का स्कूल जाना बन्द है, साथ ही दलित आबादी के लिए कुछ डेरी व किरयाना स्टोर ने सामान देना भी बन्द कर दिया है।

पुलिस-प्रशासन के ग़ैर-ज़िम्मेदाराना रवैये के कारण दलित परिवार असुरक्षा के मौहाल में हैं। दूसरी तरफ़ कुछ दबंग जाति के बदमाश क़िस्म के लोग इस मुद्दे को जातिगत रूप देना चाहते थे, ताकि दलित युवकों को सबक़ सिखाया जा सके और दलित परिवारों के हक़-अधिकारों की आवाज को दबाया जा सके। सरपंच का पद एक जनप्रतिनिधि का पद है, इसलिए क़ानूनन जनता के प्रति उसकी जवाबदेही बनती है। ऐसे मुद्दे पर सभी गाँववासियों को चाहे वे किसी भी जाति-धर्म के हो, सोचना चाहिए यदि पंचायत में पारदर्शिता और जवाबदेही नहीं होगी तो हमारा जनप्रतिनिधियों को चुनने का क्या मक़सद है? अगर हम सही मायने में गाँव या देश से जाति-व्यवस्था के ज़हर को बाहर निकालना चाहते हैं तो हमें न्याय और इन्साफ़ के पक्ष में खड़ा होना होगा।

साथ ही हर जाति के ग़रीबों के ख़िलाफ़ जारी भयंकर लूट-खसोट की इस व्यवस्था के ख़िलाफ़ लड़ते हुए यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि ग़रीबों में भी सबसे असुरक्षित व कमज़ोर दलित जाति के मेहनकतकश हैं, इसीलिए वे आर्थिक लूट के अलावा सामाजिक-सांस्कृतिक व राजनीतिक अपराधों का भी निशाना सबसे ज़्यादा बनते हैं। पिछले तीन दशकों में जितने भी दलित-विरोधी अत्याचार हुए हैं, ज़रा उनके आँकड़े उठाकर देखें कि उनमें पीड़ित दलित कौन हैं? क्या वे नेता और नौकरशाहों के वर्ग से आते हैं? क्या वे मालिकों या ठेकेदारों के वर्ग से आते हैं? नहीं! लगभग 99 प्रतिशत मामलों में ग़रीब मेहनतकश दलित ही ऐसे काण्ड का निशाना बनते हैं। साथ ही ऐसी घटनाओं को अंजाम देने वाला आमतौर पर धनी व खाते-पीते किसानों व शहरी नवधनाढ्यों का वर्ग है जिन्हें सत्ता व तमाम चुनावी पार्टियों का संरक्षण प्राप्त है। इससे क्या नतीजा निकलता है? यह कि इन दलित-विरोधी अपराधों के ख़िलाफ़ मुख्य तौर पर ग़रीब दलित मेहनतकश व अन्य जातियों के मेहनतकश एकजुट होकर ही लड़ सकते हैं। निश्चित तौर पर, ग़ैर-दलित जातियों के मेहनतकश-मज़दूरों व ग़रीब आबादी में मौजूद जातिगत भेदभाव व पूर्वाग्रहों के विरुद्ध लगातार कठोर संघर्ष चलाये बिना एकजुटता स्थापित करना नामुमकिन है।

— बिगुल संवाददाता

श्रम क़ानूनों में "सुधार" के नाम पर सौ साल के संघर्षों से हासिल अधिकार छीनने की तैयारी में है सरकार

(पेज 1 से आगे)

मनमानी शर्तों पर निचोड़ना आसान बनाना।

श्रम मंत्री बंडारू दत्तात्रेय ने पहले ही यह कहकर सरकार की नीयत साफ़ कर दी थी, "श्रम क़ानूनों का मौजूदा स्वरूप विकास में बाधा बन रहा है, इसीलिए सुधारों की आवश्यकता है।" कहने की ज़रूरत नहीं कि विकास का मतलब पूँजीपतियों का मुनाफ़ा बढ़ना ही माना जाता है। मज़दूरों को बेहतर मज़दूरी मिले, उनकी नौकरी सुरक्षित हो, उनके बच्चों को अच्छी शिक्षा और परिवार को सुकून की ज़िन्दगी मिले, इसे विकास का पैमाना नहीं माना जाता। इसलिए, विकास के लिए ज़रूरी है कि थैलीशाहों को अपनी शर्तों पर कारोबार शुरू करने, बन्द करने, लोगों को काम पर रखने, निकालने, मनचाही मज़दूरी तय करने आदि की पूरी छूट दी जाये और मज़दूरों को यूनियन बनाने, एकजुट होने जैसी "विकास-विरोधी" कार्रवाइयों से दूर रखा जाये।

पिछले मार्च में, श्रम एवं रोज़गार मंत्रालय ने श्रम क़ानूनों को सरल बनाने के नाम पर की जा रही कवायद के तहत लेबर कोड की तीसरी श्रृंखला जारी की। इस मसौदा संहिता में मज़दूरों-कर्मचारियों को सामाजिक और रोज़गार सुरक्षा प्रदान करने से संबंधित 15 केंद्रीय श्रम क़ानूनों के प्रावधानों को एक में मिला दिया गया है। ये क़ानून हैं: कर्मचारी राज्य बीमा क़ानून, कर्मचारी फंड एवं विविध प्रावधान क़ानून, कर्मचारी मुआवज़ा क़ानून, मातृत्व लाभ क़ानून, ग्रेच्युटी भुगतान क़ानून, असंगठित मज़दूर सामाजिक सुरक्षा क़ानून, भवन एवं अन्य निर्माण श्रमिक कल्याण उपकर (सेस) क़ानून, बीड़ी श्रमिक कल्याण उपकर (सेस) क़ानून, बीड़ी श्रमिक कल्याण कोष क़ानून, लौह अयस्क खदान, मैंगनीज़ अयस्क खदान और क्रोम अयस्क खदान कल्याण उपकर क़ानून, माइका खदान श्रमिक कल्याण उपकर क़ानून तथा श्रमिक कल्याण कोष क़ानून, लाइमस्टोन और डोलोमाइट खदान श्रमिक कल्याण कोष क़ानून, चलचित्र श्रमिक कल्याण उपकर क़ानून और चलचित्र श्रमिक कल्याण कोष क़ानून।

संहिता औपचारिक क्षेत्र के साथ ही अनौपचारिक क्षेत्र पर भी लागू होती है और इसमें कैज़ुअल, पीस रेट, फिक्स्ड टर्म वर्कर, घर से काम करने वाले और घरेलू मज़दूर भी शामिल किये गये हैं। इसमें सरकार की ओर से पेंशन, प्रॉविडेंट फंड, मातृत्व लाभ, बीमारी, विकलांगता आदि लाभ सहित तमाम तरह की नयी योजनाएँ बनाने की बात की गयी है। इनका लाभ लेने के लिए मज़दूरों को अपने राज्य के सामाजिक सुरक्षा बोर्ड में पंजीकरण कराना होगा जिसके लिए आधार कार्ड आवश्यक होगा। हर पंजीकृत मज़दूर का एक सामाजिक सुरक्षा खाता दिया जाएगा जिसे विश्वकर्मा कार्मिक सुरक्षा खाता (विकास) नाम दिया गया है।

इन प्रावधानों के अमल के लिए कई नयी संस्थाएँ बनाने की बात की गयी है। इनमें प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा परिषद, केंद्रीय साामजिक सुरक्षा बोर्ड और राज्य सामाजिक सुरक्षा बोर्ड शामिल हैं। इनके अलावा मज़दूरों के पंजीकरण, अंशदान प्राप्त करने, कोषों और लाभों के भुगतान के प्रबंधन के लिए लाइसेंसधारी बिचौलिया एजेंसियों को शामिल किया जाएगा। कर्मचारी प्रॉविडेंट फंड स्कीम, कर्मचारी पेंशन योजना, कर्मचारी जमा आधारित बीमा योजना तथा कर्मचारी राज्य बीमा क़ानून के तहत विभिन्न योजनाओं को खत्म कर दिया जायेगा। विभिन्न राज्यों में असंगठित मज़दूरों के लिए बनी कल्याण योजनाओं और कल्याण कोषों को भी खत्म कर दिया जायेगा। यह भी स्पष्ट नहीं है कि मौजूदा योजनाओं में जिन श्रमिकों-कर्मचारियों को लाभ मिल रहा है, उन्हें नई योजनाओं में वही लाभ मिलते रहेंगे या नहीं।

दावा किया जा रहा है कि इस नये क़ानून से देश के सभी मज़दूरों को सामाजिक सुरक्षा मिलेगी, लेकिन इसमें झोल ही झोल हैं। पंजीकरण सिर्फ उन्हीं इकाइयों का होगा जिनमें केंद्रीय सरकार द्वारा अधिसूचित सीमा के बराबर या उससे ज़्यादा मज़दूर काम करते हों। फिलहाल, बिजली इस्तेमाल करने वाले जिन उद्योगों में 10 मज़दूर काम करते हैं, या बिना बिजली वाले जिन उद्योगों में 20 मज़दूर काम करते हैं वे कारखाना क़ानून के दायरे में आते हैं। मोदी सरकार काफी समय से इस सीमा को दोगुना, यानी बिजली वाले उद्योगों में 20 मज़दूर और बिना बिजली वाले उद्योगों में 40 मज़दूर करने की कोशिश में है। अगर ऐसा हुआ तो एक झटके में देश के हज़ारों कारखाने और वर्कशॉप कारखाना क़ानून के दायरे से बाहर हो जायेंगे। उद्योगों के वार्षिक सर्वेक्षण के आँकड़े बताते हैं कि 2011-12 में कुल 1.75 लाख फैक्ट्रियों में से करीब एक लाख फैक्ट्रियों में 30 से कम मज़दूर काम करते थे। सभी कारखानों के 36 प्रतिशत में 14 से कम मज़दूर थे। वैसे यह आँकड़ा असलियत से बहुत पीछे है क्योंकि बहुत बड़ी संख्या में कारखाने कहीं पंजीकृत ही नहीं हैं या उनके आँकड़े सरकार के पास हैं ही नहीं। अगर सरकार अपने इरादे में कामयाब हो गयी तो 70 प्रतिशत से ज़्यादा फैक्ट्रियाँ कारखाना क़ानूनों के दायरे से बाहर हो जायेंगी और मज़दूर अपनी कार्यदशाओं, अधिकारों और सुरक्षा के मामले में पूरी तरह मालिकों के रहमो-करम पर हो जायेंगे। उनके पास कानूनी सुरक्षा पाने का कोई रास्ता नहीं होगा। इसके अलावा, सरकार कुछ अन्य श्रेणियों के कामगारों को संहिता के दायरे से बाहर रखने की छूट नियोक्ताओं को दे सकती है। किसी प्रतिष्ठान के आदेश के तहत अप्रेंटिस माने गये कामगारों को भी इसमें शामिल नहीं किया जायेगा। सभी जानते हैं कि कम्पनियाँ बड़े पैमाने पर अप्रेंटिस कामगारों से अपने नियमित काम कराती हैं और कई-कई साल तक उन्हें अप्रेंटिस ही रखा जाता है।

सामाजिक सुरक्षा के लाभ प्राप्त करने के लिए मज़दूरों को जो अंशदान देना होगा वह संगठित और अनौपचारिक क्षेत्र के लिए बराबर रखा गया है। असंगठित कामगारों को भी अपनी मासिक मज़दूरी का 12.5 प्रतिशत देना होगा और स्व-रोज़गार करने वाले कामगारों को 20 प्रतिशत देना होगा। दूसरी ओर, इस बारे में कोई स्पष्टता नहीं है कि नये क़ानून के तहत बनने वाले विभिन्न कल्याण कोषों में सरकार कोई अंशदान करेगी या नहीं। इतना ही नहीं, क़ानून के तहत केंद्र सरकार किसी भी नियोक्ता या नियोक्ताओं के वर्ग को सेस की वसूली से छूट दे सकती है। ऐसी छूटें पिछली तारीख से भी दी जा सकती हैं!

अधिकांश काम ठेका और विभिन्न श्रेणी के मजदूरों से करवाने वाले न केवल छोटे-मझोले, बल्कि बड़े कारखाने भी इन दिनों श्रम क़ानूनों का या तो एकदम पालन नहीं करते या बस नाममात्र को करते हैं। श्रम कार्यालय या श्रम इंस्पेक्टरों की भूमिका इन दिनों दलाल से अधिक कुछ भी नहीं रह गयी है। अब इस स्थिति को कानूनी जामा पहनाकर मालिकों को एकदम खुला हाथ दिया जा रहा है।

सबसे बड़ा सच तो यह है कि छोटे-छोटे प्लांटों से लेकर घरेलू वर्कशॉपों तक ठेका, उपठेका और पीसरेट पर उत्पादन के काम को इसतरह बाँट दिया गया है कि उनमें काम करने वाले अधिकांश मजदूरों का कोई रिकार्ड नहीं रखा जाता। ठेका, कैजुअल या अप्रेण्टिस मज़दूर को मिलने वाले कानूनी हक भी उन्हें हासिल नहीं होते। व्यवहारत: वे दिहाड़ी मज़दूर होते हैं जो सरकार और श्रमविभाग के लिए अदृश्य होते हैं। नये श्रम सुधारों द्वारा श्रम विभागों को एकदम निष्प्रभावी बनाकर इस किस्म के अनौपचारिकीकरण को अब ज्यादा से ज्यादा बढ़ावा दिया जा रहा है ताकि विदेशी कम्पनियाँ और देश के छोटे बड़े सभी पूँजीपति खुले हाथों से और मनमाने ढंग से अतिलाभ निचोड़ सके।

एक और महत्वपूर्ण मुद्दा यह है कि मसौदा संहिता के कई प्रावधान प्रॉविडेंट फंड ही नहीं बल्कि गेच्युटी और विभिन्न कल्याण कोषों के लिए इकट्ठा की गयी राशियों को भी शेयर बाज़ार में निवेश करने की ओर इशारा करते हैं। संहिता में ऐसे निवेशों पर किसी सीमा की बात नहीं की गयी है। यानी, सट्टा बाज़ार बैठ जाने या किसी बड़े घपले-घोटाले की चपेट में आने से करोड़ों कामगारों की सामाजिक सुरक्षा के लिए जमा धन एक झटके में डूब सकता है। मज़दूर संगठनों के तमाम विरोध के बावजूद सरकार ने यह निर्णय पहले ही ले लिया है कि वह मजदूरों के पी.एफ. संचय का 5 से लेकर 15 प्रतिशत तक 'सट्टा आधारित शेयर बाज़ार' में निवेश करेगी। निवेश की जाने वाली इस रकम को ज्यादा से ज्यादा बढ़ाने के लिए मजदूरों के पगार से पी.एफ. कटौती की रकम बढ़ाने और इस दायरे में ज्यादा से ज्यादा मजदूरों को लाने का निर्णय लिया गया है। इसके लिए कारखानेदारों के अतिरिक्त वित्त बाजार के मगरमच्छ भी लम्बे समय से सरकार पर दबाव बनाये हुए थे। सरकार का यह निर्णय, देश में मजदूरों की अतिसीमित संख्या के लिए जो भी मरियल-विकलांग सामाजिक सुरक्षा स्कीम थी, उसके ताबूत में कील ठोकने की शुरुआत है। ई.पी.एफ. के बदले में 'नेशनल पेंशन स्कीम' का जो विकल्प दिया जा रहा है, वह मात्र एक सामान्य बचत स्कीम है। ई.पी.एफ. से सब्सक्राइबर के परिवार को लाभ मिलते थे, वह एन.पी.एस. से नहीं मिलेगा। तुर्रा यह कि कुछ और संशोधनों के जरिए, छोटे कारखानों की मदद करने के नाम पर सरकार अब यह प्रावधान करने जा रही है कि 10 से 40 मजदूरों वाले कारखानों के मजदूरों को ई.पी.एफ. से पहले के मुकाबले अब कम लाभ मिला करेगा। 75 प्रतिशत औद्योगिक मज़दूर ऐसे ही कारखानों में काम करते हैं।

अभी तक सभी को मातृत्व लाभ मिलते थे अब इसमें कई तरह की शर्तें लगा दी गयी हैं। दूसरे बच्चे के बाद अब मातृत्व लाभ नहीं मिलेंगे। एक और शर्त यह लगा दी गयी है कि प्रसव से पहले के 12 महीनों में कम से कम 80 दिनों तक किसी प्रतिष्ठान में काम कर चुकी स्त्री को ही ये लाभ मिलेंगे। ज़ाहिर है कि स्त्रियों की एक बड़ी आबादी इससे वंचित हो जायेगी जिसके पास हमेशा नियमित रोज़गार नहीं होता।

मज़दूरी पर हमला

सबसे बड़ा बदलाव मज़दूरी से सम्बन्धित क़ानूनों में होने वाला है। प्रस्तावित 'मज़दूरी पर श्रम संहिता' चार मौजूदा क़ानूनों की जगह लेगी – न्यूनतम मज़दूरी क़ानून 1948, मज़दूरी भुगतान क़ानून 1936, बोनस भुगतान क़ानून 1965 और समान वेतन क़ानून 1976। एक ही विषय से जुड़े कई क़ानूनों की जगह पर एक नया क़ानून बनाने के पीछे तर्क दिया जा रहा है कि इससे अलग-अलग क़ानूनों में मौजूद आपसी अन्तरविरोध दूर होंगे। लेकिन इस आड़ में बहुत सी बातों पर पर्दा डाला जा रहा है। न्यूनतम मज़दूरी क़ानून 1948 के तहत केन्द्र और राज्य सरकारें, दोनों ही अलग-अलग क्षेत्रों में न्यूनतम मज़दूरी तय कर सकती हैं। 45 क्षेत्र केन्द्र के दायरे में आते में हैं और 1679 क्षेत्र राज्यों के अधिकार-क्षेत्र में हैं। लेकिन 'मज़दूरी पर श्रम संहिता' विधेयक में न्यूनतम मज़दूरी तय करने का अधिकार सिर्फ राज्य सरकारों को देने की बात है। इसमें सभी के लिए बाध्यकारी राष्ट्रीय तल स्तरीय न्यूनतम मज़दूरी तय करने को लेकर पिछले कई वर्षों से जारी चर्चाओं को गोल ही कर दिया गया है। बाध्यकारी राष्ट्रीय तल स्तरीय न्यूनतम मज़दूरी का प्रावधान विकसित औद्योगिक देशों में भी लम्बे समय से मौजूद है। कोई भी राज्य सरकार इस बुनियादी मज़दूरी से ऊपर मज़दूरी तय कर सकती है लेकिन इससे नीचे नहीं। इसके न रहने से राज्य सरकारें मनमानी मज़दूरी तय करने के लिए आज़ाद होंगी और अपने-अपने राज्य में निवेश के लिए उद्योगपतियों को आमंत्रित करने के लिए मज़दूरी कम करने की होड़ में मज़दूरों की बलि चढ़ा देंगी। अर्जुन सेनगुप्त की अध्यक्षता में बने असंगठित क्षेत्र में उद्यमों के लिए राष्ट्रीय आयोग के सदस्य रहे प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डा. रवि श्रीवास्तव का कहना है कि अधिकतर राज्यों में वेतन बोर्ड खस्ताहाल हैं और उनमें वर्षों से अनेक पद खाली पड़े हैं। ऐसे में मज़दूरी तय करने का ज़िम्मा राज्य सरकारोंको दे देने से भला किसे फ़ायदा होगा।"

श्रम क़ानूनों के उल्लंघन पर निगरानी से छूट

नये क़ानून को लागू करने के बारे में भी बहुत झोल है। इंस्पेक्टर राज खत्म करने और "कारोबार करने को आसान बनाने" के नाम पर मालिकान को सारे नियम-क़ानूनों को तोड़ने-मरोड़ने की छूट तो पिछले कई वर्ष से दी जा रही है और मोदी सरकार के आने के बाद जारी दिशानिर्देशों में इसे और भी ढीला कर दिया गया था। अब नये क़ानून में एक कदम और आगे जाकर कहा गया है कि "इंस्पेक्शन की व्यवस्था के लिए तय किये गये मानदंड लेबर कमिश्नर द्वारा समय-समय पर बदले जा सकते हैं।"

'इंस्पेक्टर राज' के ख़ात्मे की माँग मालिकान की ओर से लम्बे समय से उठाई जा रही है, लेकिन पहली बार लेबर इंस्पेक्टर को ही ख़त्म करने का काम मोदी सरकार करने जा रही है। 'मज़दूरी पर श्रम संहिता' में लेबर इंस्पेक्टर की जगह पर 'फैसिलिटेटर' यानी 'कार्य सुगम बनाने वाला' की नियुक्ति की बात कही गयी है। उनका काम होगा "नियोक्ताओं और मज़दूरों को इस संहिता के प्रावधानों के अनुपालन के सबसे प्रभावी तरीकों के बारे में जानकारी प्रदान करना।" मज़दूरी का भुगतान क़ानून के तहत क़ानून का पालन नहीं करने और जाँच में सहयोग नहीं करने पर मालिक पर जुर्माना लगाने का प्रावधान है। लेकिन 'मज़दूरी पर श्रम संहिता' में कहा गया है कि मालिक के ख़िलाफ़ क़ानूनी कार्रवाई करने से पहले फैसिलिटेटर उसे लिखित निर्देश देकर क़ानून को लागू करने का एक मौक़ा देगा। अगर निर्धारित समय के भीतर मालिक ने उसे दुरुस्त कर लिया तो फिर कोई कार्रवाई नहीं की जायेगी।

किसी भी कारखाना इलाक़े में थोड़ा समय बिताने वाला हर व्यक्ति जानता है कि श्रम विभाग मज़दूरों की सुरक्षा के लिए क्या करता है। लेबर इंस्पेक्टर मालिकों की जेब में होते हैं और श्रम क़ानूनों का नंगई से उल्लंघन होता है। फिर भी इस बात की संभावना रहती है कि मज़दूर एकजुट हों तो ऐसे उल्लंघनों पर कार्रवाई के लिए श्रम

(पेज 9 पर जारी)

इलेक्ट्रोनिक व सोशल-मीडिया पर चल रहे कारनामे

आजकल व्हाट्सऐप, फेसबुक ट्विटर, यूट्यूब इत्यादि के ज़रिए तरह-तरह की झूठी खबरें फैलाने और लोगों के बीच नफ़रत को बढ़ाने के लिए कैसे-कैसे कारनामे चलते हैं, आइये उन पर एक नज़र डालते हैं।

राजनैतिक पार्टियों ने तो अपने मुताबिक़ हवा तैयार करने के लिए ख़ुद के आई.टी. सेल्स भी बना रखे हैं। आपको मालूम ही होगा कि कुछ दिनों पहले मध्य प्रदेश से भाजपा के आई.टी. सेल के प्रमुख ध्रुव सक्सेना व अन्य का पाकिस्तान के ख़ुफ़िया विभाग – आईएसआई से सम्बन्ध होने की ख़बरें आयी थीं। यहाँ हम इसी तरह के आई.टी. सेल्स की बात कर रहे हैं। आई.आई.टी. जैसे देश के उच्चतम संस्थानों में से कुछ छात्र पास होने के बाद ऐसी कम्पनियों का स्टार्ट-अप (कोई नई कम्पनी खोलना) भी शुरू कर रहे हैं जो किसी राजनैतिक पार्टी से पैसे लेकर विभिन्न तकनीकों के व्यवहार से उसके लिए प्रचार को व्यापक रूप दे। इसके लिए वे सोशल-मीडिया का काफ़ी इस्तेमाल करते हैं। किसी नेता के भाषण में आये लोगों की भीड़ को फ़ोटोशॉप द्वारा कई गुना बढ़ा-चढ़ाकर दिखाना। किसी नेता के भाषण या पार्टी की रैलियों के वीडियो को एडिट करके और प्रभावशाली बनाके पेश करना। विरोधियों के वाक्यांश को इस तरह से काट-छाँट कर पेश करना जिससे कि वे लोगों के मन में नकारात्मक प्रभाव डाले। इनके अलावा भी बहुत तरह से वे इन कामों को अंजाम देते हैं जिसके लिए 10 से 12 लाख तक की सालाना तनख्वाह देकर वे अपनी कम्पनी के लिए एनालिस्ट के पोस्ट पर इंजीनियर्स को रखते हैं। हमारे पहचान का एक बीटेक का छात्र है जिसने ऐसी ही एक कम्पनी में इण्टर्नशिप (ट्रेनिंग) की थी। उस समय वे लोग 2014 के लोकसभा चुनाव के लिए भारतीय जनता पार्टी के लिए काम कर रहे थे।

इस काम में फासिस्ट ताक़तें सबसे आगे हैं। सोशल-मीडिया और मुख्यधारा की मीडिया के भरपूर इस्तेमाल से वे आम जनमानस के दिमाग़ के साथ खिलवाड़ करने और मनचाही दिशा में उनकी सोच को मोड़ने में फिलहाल सफल हो रहे हैं। अब हम सोशल-मीडिया पर चल रहे फ़ेक (फ़र्ज़ी) न्यूज़ के कुछ उदाहरण दे रहे हैं जिन्होंने पिछले दिनों काफ़ी प्रभाव डाला:

1. कुछ दिनों पहले भारतीय सेना के दो जवानों के सर कलम कर पाकिस्तान द्वारा हत्या किये जाने की ख़बर आयी। उसके बाद सोशल-मीडिया पर ऐसे वीडियो को शेयर किया जाने लगा जिसमें खुलेआम एक व्यक्ति का सर कलम किया जा रहा था। कुछ दिनों बाद मुम्बई के पंकज जैन ने पता लगाया कि यह वीडियो 2011 का था और जिस व्यक्ति को मारा गया है वो स्पेन का एक ड्रग डीलर था। ठीक इसी प्रकार का एक और वीडियो भी आया जिसमें दिखा कि किसी आर्मी के यूनिफार्म में कुछ लोग किसी व्यक्ति के गर्दन पर कुल्हाड़ी से बार-बार वार करके सर को अलग कर देते हैं। इस वीडियो की कलई खोली अहमदाबाद के प्रतीक सिन्हा ने और बताया कि वो वीडियो ब्राज़ील का है।

2. 2000 रुपये के नोट में नैनो-चिप के होने की ख़बर को ले लीजिए। इस ख़बर को तो मुख्यधारा के इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने भी बढ़-चढ़कर दिखाया। जबकि कोई भी व्यक्ति रिज़र्व बैंक ऑफ़ इण्डिया की वेबसाइट पर नये नोटों का सही विवरण साफ़-साफ़ देख सकता था जिसमें ऐसी कोई बात नहीं थी। आम लोग इन वेबसाइट्स के बारे में नहीं जानते होंगे, लेकिन हर रोज़ काफ़ी शोध करके ख़बरों का 'ताल ठोंक के', 'डीएनए' दिखाने का दावा करने वाले देश के बड़े-बड़े तथाकथित 'देशभक्त' पत्रकारों ने इण्टरनेट की सारी सुविधाएँ होने के बावजूद भी क्या ये सर्च नहीं किया होगा? और तो और वे ये विस्तार से समझाने में लगे हुए थे कि सैटेलाइट से नोट का सम्पर्क कैसे होगा जिससे कि धरती के 120 मीटर भीतर भी अगर काला-धन छिपाया गया हो तो उसका पता आसानी से चल जायेगा।

3. जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी (जेएनयू) में पाकिस्तान ज़िन्दाबाद के नारे लगाये जाने की ख़बर आयी। इसमें तो कुछ मीडिया घरानों ने हद ही कर दी। एक वीडियो क्लिप को दिखाकर ये कहे जा रहे थे कि जेएनयू में पाकिस्तान ज़िन्दाबाद के नारे लगाये जा रहे हैं। लेकिन कुछ ही दिनों बाद जेएनयू के छात्रों ने एक वीडियो निकाला जिसमें उन्होंने बताया कि उस क्लिप में जो छात्र नारे लगाते दिख रहे हैं, वे असल में अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद से हैं। इसके बाद न्यूज़ चैनलों ने अपने वाक्य बदले और कहा कि वे लोग 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' नहीं बल्कि 'भारतीय कोर्ट ज़िन्दाबाद' के नारे लगा रहे थे। बाद में दिल्ली पुलिस ने भी जाँच के बाद कहा कि वीडियो क्लिप फ़र्ज़ी थी।

इन सबके बाद भी वहाँ के छात्रों को तरह-तरह से बदनाम करने और देशद्रोही प्रमाणित करने का सिलसिला चलता रहा। जिसके अन्तर्गत एक छात्र उमर ख़ालिद का कभी लश्करे-तैयबा से सम्बन्ध तो कभी बस्तर में नक्सलियों के साथ छुपे होने की झूठी ख़बरें दिखाई गयीं। अभी हाल में हुए नक्सल हमले में सेना के जवानों के मारे जाने पर जिस फ़ोटो को दिखाकर कहा गया कि जेएनयू में इस घटना के बाद जश्न मनाया गया, वो फ़ोटो असल में साल 2015 में छात्र यूनियन के चुनाव में जीतने की ख़ुशी मनाते समय की तस्वीर थी।

4. उत्तर प्रदेश के दादरी में मुहम्मद अख़लाक़ नामक एक व्यक्ति की भीड़ के द्वारा घर में घुसकर पीट-पीट कर हत्या कर दी गयी। इसके पीछे भी व्हाट्सऐप पर भेजी गयी फ़र्ज़ी तस्वीर थी जिसमें दिखाया गया था कि वे एक गाय का क़त्ल कर रहे थे, लेकिन उस मांस के टुकड़े की फोरेंसिक रिपोर्ट आने के बाद पता चला कि वो गाय का मांस नहीं था। अहमदाबाद में भी साल 2015 में एक आदमी को सोशल-मीडिया द्वारा फैलायी गयी झूठी ख़बरों के झाँसे में आकर भीड़ ने पीट-पीटकर मार डाला था।

मुज़फ़्फ़रनगर के भीषण दंगे भड़काने में भी भाजपा नेताओं ने झूठे वीडियो क्लिप का इस्तेमाल किया था।

इनके अलावा भी कई सारे उदाहरण मिल जायेंगे, जैसे कि दाउद इब्राहिम की हार्ट अटैक से मृत्यु हो गयी, पश्चिम बंगाल में एक हिन्दू आदमी को मुसलमानों ने मिलकर मारा, शाहरुख़ ख़ान का हाफ़िज़ सईद से सम्बन्ध इत्यादि।

इस तरह के भी मैसेज आते हैं जो अन्धविश्वास और धार्मिक कट्टरता को बढ़ावा देते हैं, जैसेकि :

"ये मैसेज अभी-अभी किसी फलाने धार्मिक-स्थल से आया है। इसे 20 लोगों को फॉरवर्ड करो तो आपका दिन बन जायेगा। अगर नहीं किया तो कोई दुर्घटना घटेगी।"

"... अगर हिन्दू के बच्चे हो तो सभी ग्रुपों में भेजो।"

".. अगर रगों में मुसलमान का ख़ून दौड़ रहा है तो ये मैसेज आगे शेयर करो।"

बहरहाल, अब जब इतना कुछ चल रहा है तो कुछ ऐसे लोग भी दिख रहे हैं जिन्होंने सामने आकर इन फेक न्यूज़ का पर्दाफ़ाश करने का ज़िम्मा लिया है और बहुत ही बेहतरीन काम कर रहे हैं। उनमें से कुछ लोगों का नाम भी ऊपर आ चुका है। इन लोगों द्वारा चलाई जा रही कुछ वेबसाइट्स के लिंक नीचे दिये जा रहे हैं।

1. बैंगलुरु में काम कर रहे शम्स ओलियाथ का ग्रुप : https://check4spam.com/

2. अहमदाबाद में काम कर रहे प्रतीक सिन्हा : https://www.altnews.in

अगर इतना काफ़ी न लगे तो और भी कई सारे उदाहरण दिये जा सकते हैं, ताकि आप ये समझ पायें कि इलेक्ट्रॉनिक व सोशल मीडिया का इस तरह से इस्तेमाल क्यों हो रहा है। हमलोग साफ़ तौर पर देख सकते हैं कि इस तरह के जो भी मैसेज या ख़बरें होती हैं, उनमें कुछ चीज़ें समान नज़र आती हैं, जैसेकि लोगों में आक्रामकता, धार्मिक-कट्टरता, अन्धविश्वास जैसी चीज़ों को बढ़ावा देना जबकि विज्ञान की दुनिया में रहने वाले हम प्रगतिशील लोग ये दावा करते हैं कि ये सब तो कब के पीछे छोड़ आये हैं। लेकिन ऐसा नहीं है क्योंकि अगर लोग आपस में बँटे रहे और रोज़मर्रा की विभिन्न समस्याओं के बावजूद सरकार पर या व्यवस्था के मालिक - पूँजीपतियों पर अपना रोष निकालने के बजाय आपस में ही लड़ते-भिड़ते रहें तो इससे यही होगा कि इस तरह के प्रतिक्रियावादी विचार समाज के शासक वर्ग को मज़बूत करने का काम करते रहेंगे और इसीलिए आर्थिक संकट की मार झेलता पूँजीवाद, जो कि फासीवाद के रूप में आ चुका है, मीडिया का इस्तेमाल और भी गन्दे व नंगे तरीक़े से करेगा और लोगों की आवारा भीड़ के माध्यम से समाज में अपनी सोच को अंजाम देता रहेगा। ऐसे में अगर आप इस आवारा भीड़ में शामिल नहीं होना चाहते हैं तो किसी भी ख़बर या सूचना को तर्क के माध्यम से अपने पहचान के लोगों से विचार-विमर्श करके उसकी वास्तविकता को खंगालने की कोशिश करें और कोई फेक न्यूज़ का पता चलते ही ज़्यादा से ज़्यादा लोगों को बतायें।

— अभिषेक

मज़दूर विरोधी आर्थिक सुधारों के ख़िलाफ़ रोष
ब्राज़ील के करोड़ों मज़दूर सड़कों पर उतरे

मार्च के दूसरे हफ़्ते में ख़बर आयी थी कि ब्राज़ील के राष्ट्रपति माईकल टेमेर ने ''भूतों'' के डर से एल्वोरेड पैलेस (राष्ट्रपति का सरकारी घर) छोड़ दिया है। ''बुरी आत्माओं'' को भगाने के लिए पादरी बुलाये गये थे, लेकिन कोई फ़ायदा नहीं हुआ। आख़िर उसे यह आलीशान घर छोड़ना ही पड़ा। लेकिन लगता नहीं कि उसे सुकून मिल पायेगा। पूँजीपति वर्ग के इस कट्टर सेवक को ब्राज़ील का मज़दूर चैन की नींद नहीं सोने दे रहा। उसके पीछे पड़े ''भूतों'' से तो शायद कोई पादरी पीछा छुड़ा भी दे, लेकिन मज़दूर आन्दोलन उसका पीछा छोड़ने वाला नहीं।

ब्राज़ील की अर्थव्यवस्था पर मन्दी की काली घटा छाई हुई है। पूँजीपति वर्ग ने एक वर्ष पहले लेबर पार्टी की डिल्मा रूसेफ़ से सत्ता छीनकर माईकल टेमेर को सौंपी थी और सोचा था कि मन्दी का भूत छू-मन्तर कर देगा। टेमेर ने राष्ट्रपति पद सँभालते हुए वादा किया था कि अर्थव्यवस्था को मज़बूत करेगा। नवउदारवादी नीतियों का यह उपासक यह काम किस तरह करेगा यह तो शुरू से ही स्पष्ट था। पिछले एक वर्ष में उसका जनविरोधी चरित्र लगातार जगज़ाहिर होता गया है। लोगों में उसकी नीतियों के ख़िलाफ़ रोष लगातार बढ़ता गया है।

28 अप्रैल 2017 को ब्राज़ील में इस देश की अब तक की सबसे बड़ी हड़ताल हुई है। सभी 26 राज्यों और फ़ेडर्ल ज़िले में हुई हड़ताल में साढ़े तीन करोड़ मज़दूरों ने हिस्सा लिया है। अगले दिनों में भी ज़ोरदार प्रदर्शन हुए हैं। मई दिवस पर बड़े आयोजन किये गये हैं। इन प्रदर्शनों में अनेकों जगहों पर पुलिस और प्रदर्शनकारियों में तीखी झड़पें हुई हैं। पुलिस ने जगह-जगह प्रदर्शनों को रोकने के लिए पूरा ज़ोर लगाया, लेकिन अधिकारों के लिए सड़कों पर उतरे मज़दूरों के सामने पुलिस की एक न चली। गोलीबारी, आँसू गैस, गिरफ़्तारियाँ, बैरीकेड - पुलिस ने मज़दूरों को रोकने के लिए बहुत कुछ आज़माया, लेकिन मज़दूरों का सैलाब रोके कहाँ रुकता था। सड़कें जाम कर दी गयीं। पुलिस के बैरीकेड तोड़ फेंके गये। गाँवों में ट्रैक्टरों से गलियाँ बन्द कर दी गयीं। ''भूतों'' से पीछा छुड़ाते हुए टेमेर जिस नये घर में आया है, वहाँ ज़ोरदार प्रदर्शन हुआ। पुलिस ने प्रदर्शनकारियों को रोकने की कोशिश की तो ज़बरदस्त पथराव के ज़रिये जवाब दिया गया।

इस हड़ताल में औद्योगिक मज़दूरों, रेल मज़दूरों, बस ड्राइवरों, अध्यापकों, सरकारी मुलाजिमों, नौजवानों आदि तबक़ों ने शमूलियत की है। 3 मई को जेलों के कर्मचारियों ने न्याय मन्त्रालय की इमारत पर क़ब्ज़ा कर लिया था।

टेमेर सरकार पेंशन प्रणाली और श्रम क़ानूनों में भारी मज़दूर विरोधी बदलाव करने जा रही है। रिटायरमेण्ट की न्यूनतम उम्र मर्दों के लिए 65 वर्ष और स्त्रियों के लिए 62 वर्ष की जा रही है। पहले यह स्त्रियों के लिए 55 और मर्दों के लिए 60 थी। पूरी पेंशन के लिए न्यूनतम कार्य अवधि 45 वर्ष तय की जा रही है। पहले यह अवधि शहरी मज़दूरो के लिए 25 वर्ष और ग्रामीण मज़दूरों के लिए 15 वर्ष थी। पेंशन प्रणाली में ऐसे प्रस्तावित बदलावों ने मज़दूरों को आक्रोश से भर दिया है। टेमेर सरकार का यह भी प्रस्ताव है कि सरकार के सार्वजनिक ख़र्च को 20 वर्ष के लिए स्थिर कर दिया जाये।

अन्य श्रम क़ानूनों में भी भारी बदलाव किये जा रहे हैं। मालिक-मज़दूर के बीच समझौतों को क़ानूनों के ऊपर मान्यता दी जा रही है। इससे कार्य-परिस्थितियाँ काफ़ी बिगड़ जायेंगी। मालिक मज़दूरों पर अपनी मर्ज़ी थोपने में और अधिक सक्षम हो जायेंगे। यह प्रस्ताव लाया जा रहा है कि अगर मालिक मज़दूरों के साथ अपना क़रार तोड़ता है तो मज़दूर को कोई मुआवज़ा नहीं मिलेगा। मालिक द्वारा दुर्व्यवहार पर मिलने वाले मुआवज़े को भी घटाया जा रहा है।

ब्राज़ील के इतिहास की यह सबसे बड़ी हड़ताल उस समय हुई है, जब यहाँ बेरोज़गारी ने सारे रिकॉर्ड तोड़ फेंके हैं। इस समय इस देश में बेरोज़गारी दर 13.7 प्रतिशत हो चुकी है। माईकल टेमेर के राष्ट्रपति कार्यकाल के दौरान इसमें तेज़ वृद्धि हुई है। एक वर्ष पहले यह दर 11.7 प्रतिशत थी। सरकार बार-बार झूठे वायदे कर रही है कि इसके द्वारा किये जा रहे आर्थिक सुधारों से बेरोज़गारी घटेगी और अर्थव्यवस्था में मज़बूती आयेगी।

हड़ताल का नेतृत्व भले ही पूँजीवादी तत्वों के हाथ में है, लेकिन इस हड़ताल में मज़दूरों की बड़ी शमूलियत दिखाती है कि हुक्मरानों की नवउदारवादी नीतियों के ख़िलाफ़ मज़दूर वर्ग में ज़ोरदार आक्रोश है, क्योंकि ये नीतियाँ जनविरोधी नीतियाँ हैं। भारत में मोदी सरकार इस समय नवउदारवादी नीतियों को ज़ोरशोर से आगे बढ़ा रही है। भारत के मज़दूर वर्ग को भी इन नीतियों के ख़िलाफ़ अपने ब्राज़ीली मज़दूर साथियों की तरह बड़े स्तर पर सड़कों पर उतरना होगा।

- रणबीर

आरएसएस का "गर्भ विज्ञान संस्कार" - जाहिल नस्लवादी मानसिकता का नव-नाज़ी संस्करण

डॉ. पावेल पराशर

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का नस्लवादी एजेण्डा, जो इनके राजनैतिक पूर्वजों यानी जर्मनी की नाज़ी पार्टी का भी प्रमुख एजेण्डा था, आए दिन ख़ुद इन्हीं के द्वारा बेनकाब होता रहता है। आरएसएस की स्वास्थ्य विंग आरोग्य भारती ने "गर्भ विज्ञान संस्कार" नाम से एक प्रोज़ेक्ट शुरू किया है। इसके तहत गर्भ से "उत्तम सन्तति", यानी लम्बी, गोरी नस्ल के शिशु पैदा करने के लिए माँ-बाप को तीन महीने का एक कोर्स करना पड़ता है। इस कोर्स में ग्रह नक्षत्रों की दिशा-दशा के आधार पर युगलों के सहवास का समय और तरीक़ा तय किया जाता है, ताकि "उत्तम" नस्ल के बच्चे पैदा हों। यह प्रोज़ेक्ट पिछले एक दशक से गुज़रात में चल रहा है और 2015 से इसे राष्ट्रव्यापी स्तर पर लॉन्च किया जा चुका है। संघ की शिक्षा विंग "विद्या भारती" की मदद से इस प्रोज़ेक्ट के फ़िलहाल दस ब्रांच हैं जो गुज़रात और मध्यप्रदेश में स्थित हैं। जल्द ही यूपी और बंगाल में भी इसे फैलाने का प्रोग्राम है और 2020 तक एक "श्रेष्ठ" नस्ल पैदा करने की परियोजना है।

यह प्रोज़ेक्ट जो प्रथम दृष्टया ही जहालत और पोंगापन्थ का एक बेजोड़ नमूना है, उसकी अवैज्ञानिकता पर तो बाद में बात की जाये। फ़िलहाल बात इस पर होनी ज़्यादा ज़रूरी है कि जो ये "श्रेष्ठ" नस्ल के लम्बे गोरे बच्चे पैदा करने की मानसिकता है, वह इनके राजनैतिक पूर्वजों यानी जर्मन नाज़ियों के "नस्ली शुद्धता" के फासीवादी सिद्धान्त से उधार ली हुई है।

हिटलर के दौर में नाज़ी पार्टी ने जो नस्लवादी नफ़रत का प्रचार किया, उसमें आर्य नस्ल को श्रेष्ठ नस्ल के रूप में स्थापित करने और यहूदियों, अश्वेतों, भूरों को निम्न नस्ल और दूषित रक्त के रूप में प्रचारित करते हुए घृणा का प्रसार किया गया। हिटलर के नेतृत्व में कथित "श्रेष्ठ" आर्य नस्ल की शुद्धता को बरक़रार रखने के नाम पर नाज़ियों ने ऐसे ही जाहिल और अमानवीय वैज्ञानिक शोधों पर पानी की तरह पैसा बहाया था। जोसफ़ मेंजेल नामक डॉक्टर के रूप में एक नाज़ी हत्यारा था जिसे नाज़ियों ने औश्विट्ज़ यातना शिविर का मुख्य डॉक्टर नियुक्त किया था। उस यातना शिविर में किसको श्रम के लिए भेजना है और किसको गैस चैम्बर में हत्या के लिए, यह तय करने के साथ-साथ वह जर्मन आर्य नस्ल को "उन्नत" करने के लिए भी शोध करता था। इस शिविर में उसने 3000 बच्चों पर भयानक यातनादायी प्रयोग किये जिसमें दो सौ बच्चे ही ज़िन्दा बचे थे।

"गर्भ में आर.एस.एस. का आदर्श बच्चा"
— कार्टून:अभिषेक, छात्र, आई.आई.टी. कानपुर

अपनी नस्लवादी व रंगभेदी मानसिकता का एक नमूना हाल ही में बीजेपी नेता व आरएसएस की साप्ताहिक पत्रिका 'पांचजन्य' के भूतपूर्व सम्पादक तरुण विजय ने कुछ दिनों पहले ही दक्षिण भारतीय लोगों पर रंगभेदी टिप्पणी करते हुए दे डाला था।

हमारे देश के ये संघी फासिस्ट तो जहालत के मामले में नाज़ियों से भी दो क़दम आगे हैं। ये जाहिल, मूर्ख और मध्ययुगीन मानसिकता वाले हैं, इसमें तो कोई शक की गुंजाइश नहीं, लेकिन यह नस्लवादी विचारधारा जो इनके रग-रग में बसी है, उसकी भी नंगी नुमाइश 21वीं सदी में ये स्वदेशी फ़ासिस्ट अब बिना किसी शर्म या संकोच के कर रहे हैं। इनके इस "गर्भ विज्ञान" का वैसे तो कोई वैज्ञानिक आधार भी नहीं है। लेकिन सही मायने में "उत्तम सन्तति" यानी स्वस्थ जच्चा-बच्चा की बात की जाये, तो वह इनकी सरकार के एजेण्डा में दूर-दूर तक कहीं नहीं है। साल दर साल स्वास्थ्य बजट में कटौती करती मोदी सरकार इस तथ्य की बेशर्मी के साथ अनदेखी करती आयी है कि मातृत्व मृत्यु दर, मातृत्व, शिशु व बाल कुपोषण के आँकड़ों के मामले में भारत दुनिया के सबसे पिछड़े देशों की क़तार में खड़ा है। सरकारी आँकड़े के अनुसार, देश की 75 फीसदी माँओं को पोषणयुक्त भोजन नहीं मिलता। विश्व स्वास्थ्य संगठन, यूनिसेफ, यू.एन.एफ.पी.ए. और विश्व बैंक द्वारा तैयार की गयी 'मैटर्नल मॉर्टेलिटी रिपोर्ट' (2007) के अनुसार, पूरी दुनिया में गर्भावस्था या प्रसव के दौरान 5.36 लाख स्त्रियाँ मर जाती हैं। इनमें से 1.17 लाख मौतें सिर्फ़ भारत में होती हैं। भारत में प्रसव के दौरान 1 लाख में से 450 स्त्रियों की मौत हो जाती है। गर्भावस्था और प्रसव के दौरान मृत्यु के 47 फीसदी मामलों में कारण ख़ून की कमी और अत्यधिक रक्तस्राव होता है।

ऐसे में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों को दुरुस्त करने, सुरक्षित प्रसव के लिए प्रशिक्षित स्वास्थ्यकर्मियों की संख्या बढ़ाने व सरकारी अस्पतालों को प्रसव के ज़रूरी उपकरणों से लैस करने के बजाय ग्रह नक्षत्रों के आधार पर सहवास और गर्भधारण का समय तय करने जैसी बेहूदा और जाहिल परियोजनाओं को जिस तरह बढ़ावा दिया जा रहा है, वह एक ख़तरनाक प्रवृत्ति है जिसका विरोध होना चाहिए। साथ ही ऐसी मानसिकता का भी विरोध ज़रूरी है जो अपने इस जाहिल नस्लवादी खुमार में इंसान के प्राकृतिक गुणों को दोयम दर्जे का स्थापित करते हुए कोयल जैसी आवाज़, चीते जैसी चाल और कुत्ते जैसी वफ़ादार "श्रेष्ठ" नस्ल पैदा करने की महत्वाकांक्षा रखता है।

क्या छँटनी/बेरोज़गारी की वज़ह ऑटोमेशन है?

उद्योग में ऑटोमेशन से भारी बेरोजगारी फैलने की बड़ी चर्चा है। 'विशेषज्ञ' कहते हैं श्रमिकों के लिए आगे काम ही नहीं रहेगा, रोबोट से करा लिया जायेगा और सरकार ख़ैरात के तौर पर 'न्यूनतम आमदनी' देने पर विचार करेगी!

बात सही है कि ऑटोमेशन के बाद उतने ही उत्पादन या सेवा के लिए श्रमिकों की कम संख्या की जरूरत होती है। ध्यान दें 'उतने ही उत्पादन' के लिए। लेकिन क्या ज़रूरत की वस्तुओं/सेवाओं की उपलब्धता इस स्तर तक पहुँच चुकी है कि अब उनके विस्तार की और आवश्यकता नहीं है? दूसरे, यह भी देखना होगा कि क्या कामगारों पर काम का बोझ इतना कम हो चुका है कि वे फालतू हो चुके हैं?

पहले सवाल को देखें तो अनाज, दाल, फल-सब्ज़ी, दूध, माँस, आदि खाद्य पदार्थों से लेकर वस्त्र, जूते, आवास, रोजमर्रा के जरूरी सामान हों या सफ़ाई, पानी, बिजली, सिंचाई, यातायात से लेकर स्कूल-कॉलेज, अस्पताल, अन्य सांस्कृतिक आवश्यकतायें हों, मुश्किल से 10 फीसदी लोग ही अपनी आवश्यकता पूरी कर पाते हैं। अगर सभी नागरिकों की जरूरतें पूरा करने की सोचा जाये तो उत्पादन/सेवाओं के इस स्तर पर विस्तार के लिए श्रमिकों की कमी पड़ेगी, सब स्त्री-पुरुषों के लिए श्रम करना अनिवार्य कर देने के बाद भी जरुरत पूरी नहीं होगी। तब असल में सोचना होगा कि तकनीक का और भी विकास, और भी ऑटोमेशन किया जाये। सड़क पर कोई भी इंसान झाड़ू क्यों लगाता रहे, मशीन क्यों नहीं जिसे सीख कर कोई भी जल्दी बड़े पैमाने पर सफाई कर सके, न कि ऐसे सब कामों कोई जाति जैसी अमानवीय व्यवस्था रह जाये? खेत, खान में आदमी पशुवत दिन-रात क्यों खटता रहे? उसके लिए यंत्रीकरण क्यों न किया जाये ताकि स्त्री-पुरुष सब समान रूप से इन कामों की जिम्मेदारी सँभाल सकें।

दूसरे, 19वीं सदी से शुरू हुए श्रमिक संघर्षों ने 8 घंटे काम, 8 घंटे आराम, 8 घंटे मनोरंजन के सिद्धांत को स्थापित किया था। लेकिन आज भी स्थिति है कि अधिकांश कामगार इससे बहुत ज़्यादा, 12-14 घंटे तक भी काम करने के लिए मजबूर हैं; खुद को मज़दूर न मानने वाले सफ़ेद कॉलर वाले बैंक, आईटी, प्रबंधन, आदि वाले तो सबसे ज्यादा! फिर श्रमिक फालतू कैसे हो गए, जैसा कि कहा जा रहा है कि आगे काम ही नहीं रहेगा?

तो काम न सिर्फ है बल्कि उसके विस्तार की अपार सम्भावनायें भी हैं। फिर समस्या क्या है? कुछ लोग बोलेंगे, ऐसा करने के लिए धन नहीं है। पर ऐसा करने में धन लगता कहाँ है? उत्पादन के लिए जमीन, इमारत, कच्चा माल, औजार और मानव श्रम यही 3 चीजें तो लगती हैं। मुद्रा तो मात्र इनमें लगे तुलनात्मक श्रम के हिसाब और इनके विनिमय का माध्यम है। पहले सोना-चाँदी यह करते थे, फिर कागज करने लगा, अब तो कम्प्यूटर के डेटाबेस में ही इधर-उधर करके काम चल जा रहा है, उत्पादन में कहीं यह मुद्रा काम नहीं आती!

फिर बाधा कहाँ है? बाधा है कि पूरे समाज के सामूहिक श्रम से पैदा इन उत्पादन के साधनों पर कुछ लोगों का स्वामित्व और बाकी के लिए उन्हें अपनी श्रमशक्ति बेचने की विवशता। श्रमशक्ति से उत्पादित मूल्य का चुरा लिया गया हिस्सा ही उनका मुनाफा है जिसको एकत्र कर ये पूँजी के मालिक बने हैं। अब जितनी कम श्रम शक्ति का उपयोग कर ये उत्पादन कर सकें, उतना ही इनका मुनाफा। लेकिन यह बिके कहाँ? श्रमिकों की क्रय शक्ति कम है, जरुरत होते हुए भी खरीद नहीं सकते। इसलिए पहले ही 'अति उत्पादन' की स्थिति है, उद्योग 70% क्षमता पर चल रहे हैं। तो मुनाफे के लिए उत्पादन बढ़ाना नहीं बल्कि कम श्रमिकों से कराना मकसद है। इसलिए ऑटोमेशन का नतीजा छँटनी और बेरोजगारी है, काम की कमी नहीं।

यही आज के समाज का मूल अंतर्विरोध है जिसका समाधान सरकार द्वारा दी गई खैरात नहीं, उत्पादन के समस्त साधनों पर समाज का सामूहिक स्वामित्व है, जिसमें समाज के सभी सदस्यों की जरूरतों की पूर्ति के लिए उत्पादन की योजना होने से न सिर्फ चाहने वालों हेतु रोजगार होगा बल्कि सबके लिए काम करना अनिवार्य करना होगा, निठल्ले बैठकर खाना नहीं।

— मुकेश त्यागी

"हमारे युग में हर वस्तु अपने गर्भ में अपना विपरीत गुण धारण किए हुए प्रतीत होती है । हम देख रहे हैं कि मानव श्रम को कम करने और उसे फलदायी बनाने की अदभुत शक्ति से सम्पन्न मशीनें लोगों को भूखा मार रही हैं , उन्हे थकाकर चूर कर रही हैं । दौलत के नूतन स्रोतों को किसी अजीब जादू-टोना के जरिये अभाव के स्रोतों में परिणत किया जा रहा है । तकनीक की विजयें चरित्र के पतन से खरीदी जा रही हैं , और लगता है कि जैसे-जैसे मनुष्य प्रकृति को विजित करता जाता है, वैसे-वैसे वह दूसरे लोगों का अथवा अपनी ही नीचता का दास बनता जाता है । विज्ञान का शुद्ध प्रकाश तक अज्ञान की अंधेरी पार्श्वभूमि के अलावा और कहीं आलोकित होने में असमर्थ प्रतीत होता है । हमारे सारे आविष्कारों तथा प्रगति का यही फल निकलता प्रतीत होता है कि भौतिक शक्तियों को बौद्धिक जीवन प्रदान किया जा रहा है तथा मानव जीवन को प्रभावहीन बनाकर भौतिक शक्ति बनाया जा रहा है । एक ओर आधुनिक उद्योग और विज्ञान के बीच, और दूसरी ओर ,आधुनिक कंगाली तथा अधःपतन के बीच का यह बैरभाव, हमारे युग की उत्पादक शक्तियों तथा सामाजिक सम्बन्धों के बीच का यह बैरभाव स्पृश्य, दुर्दमनीय तथा अकाट्य तथ्य है ।"

— कार्ल मार्क्स (पीपुल्स पेपर' की जयंती पर भाषण)

इलाज कराने वाली कम्पनियों का कौन करेगा इलाज?

तपिश

हाल ही में राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2017 पारित हुई है। सरकार का दावा है कि इसके बाद भारत की जनता को सस्ती चिकित्सा सुविधाएँ मुहैया कराना आसान हो जायेगा। सरकार यह भी दावा कर रही है कि राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2017 के बाद निजी अस्पतालों की लूट पर शिकंजा कसना आसान हो जायेगा। ये दावे बेहद आकर्षक हैं और कोई भी आम भारतीय नागरिक इनका समर्थन ही करेगा, लेकिन समर्थन या विरोध करने से पहले इन दावों की असलियत जानना ज़रूरी है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2017 के ज़रिये स्वास्थ्य सुविधाओं को मुहैया कराने का एक ऐसा मॉडल अपनाया जा रहा है जो बाक़ी दुनिया में 1985 के आसपास अपनाया गया था। इसे परचेज़र प्रोवाइडर स्पिलिट मॉडल के नाम से जाना जाता है। इसके तहत सरकार निजी संस्थाओं से स्वास्थ्य सेवाओं को ख़रीदकर इन्हें जनता को मुहैया कराती है।

इंग्लैण्ड, दक्षिण अफ़्रीका स्वीडन, इरान, न्यूज़ीलैण्ड जैसे देशों से इस मॉडल को लागू करने की शुरुआत की गयी थी और आज क़रीब 30-35 वर्षों का अनुभव बताता है कि इस मॉडल के पक्ष में जितने दावे किये गये थे, उस पर यह खरा नहीं उतरा है। इसे लागू करने की वजह से स्वास्थ्य सेवाओं का स्तर गिरा है, लापरवाहियाँ बढ़ी हैं, भ्रष्टाचार और लालफीताशाही का बोलबाला बढ़ा है। जहाँ पहले यह दावा किया गया था कि इसके कारण स्वास्थ्य सेवाएँ सस्ती हो जायेंगी, पर असल में हुआ यह कि स्वास्थ्य सेवाओं में बड़ी एकाधिकारी कम्पनियों का बोलबाला बढ़ गया और चिकित्सा सुविधाएँ काफ़ी महँगी होती चली गयीं।

पिछले कुछ सालों में कई राज्य सरकारें इसी नीति पर अमल करती रही हैं। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश सरकार ने 'बिल एण्ड मिलिण्डा गेट्स फ़ाउण्डेशन' के साथ मिलकर प्राथमिक चिकित्सा सेवाओं को आउटसोर्स करने के मक़सद से अन्तरराष्ट्रीय संविदा की घोषणा की और इसकी शर्तें इस तरह से रखी गयीं कि स्थानीय सेवादाताओं को इसमें भाग लेने का कोई अवसर नहीं मिलेगा। विभिन्न सेवादाताओं के बीच कड़ी प्रतियोगिता के कारण कम से कम क़ीमत पर चिकित्सा सेवाएँ उपलब्ध कराने का दावा इन हालात में एक छलावा बनकर रह जाता है। राजस्थान पहले से ही चिकित्सा सेवाओं को निजी हाथों में सौंपने का मॉडल बन चुका है। राजस्थान सरकार ने अभी पिछले ही साल 213 प्राइमरी हेल्थ सेण्टर निजी संस्थानों को सौंप दिये हैं। ठीक इसी तरह तमिलनाडु और तेलंगाना में भी सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं को प्राइवेट हाथों में दिया जा रहा है। तेलंगाना सरकार ने सरकारी आदेश पारित कर अस्पतालों में वार्ड बॉय और आया की सेवाओं का हाल ही में निजीकरण किया है। इसके लिए सरकार प्रति बैड के बदले निजी कम्पनियों को 5016 रुपये का भुगतान कर रही है।

महँगी होती चिकित्सा सेवाओं के अलावा दवाइयों के दामों को नियन्त्रित करना एक ज़रूरी क़दम है। हालाँकि तमाम सरकारें दवा कम्पनियों की मनमानी लूट पर नियन्त्रण लगाने का दावा पेश करती रही हैं और वर्तमान भाजपा सरकार इसका अपवाद नहीं है। लेकिन वास्तव में ऐसा होता दिख नहीं रहा है। कुछ दिन पहले जब भारत सरकार ने दवाओं की क़ीमतों पर नियन्त्रण लागू करने वाला बयान जारी किया तो आम जन में ऐसी धारणा पैदा हुई है कि शायद अबकी बार सचमुच में दवाओं के दाम कम हो जायेंगे। ज़मीनी हक़ीक़त यह है कि सरकार की बनायी हुई एक प्रमुख संस्था 'नीति आयोग' और कई दूसरे सरकारी मन्त्रालय और विभाग दवा कम्पनियों के साथ मिलकर दवाओं के दामों को नियन्त्रण मुक्त रखने की ज़ोरदार मुहिम चला रहे हैं। इस मुहिम में परिवार एवं कल्याण मन्त्रालय, खाद एवं रसायन मन्त्रालय, व्यापार एवं उद्योग मन्त्रालय तथा डिपार्टमेण्ट ऑफ़ फ़ार्मास्यूटिकल आदि सक्रिय हैं। ऐसे हालात में यह आसानी से अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि सरकार की दवाओं की क़ीमतों के नियन्त्रण सम्बन्धी घोषणा का क्या होने वाला है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2017 से चिकित्सा क्षेत्र में सेवाएँ प्रदान करने और अस्पतालों की श्रृंखला चलाने वाली ज़्यादातर बड़ी कम्पनियाँ बेहद ख़ुश हैं। इनकी ख़ुशी का राज़ समझना हो तो 'मेदान्ता' के नाम से मशहूर अस्पतालों के कर्ताधर्ता डॉ. नरेश त्रेहन का बयान ग़ौर करने लायक है। डॉ. त्रेहन ने बताया है कि निजी क्षेत्र की स्वास्थ्य कम्पनियों की माली हालत ठीक नहीं है। उन्होंने इस बात पर चिन्ता जताई है कि अस्पताल के मुनाफ़े की दरें काफ़ी कम हैं और निवेश की गयी पूँजी पर मिलने वाले लाभ पूँजी की कुल लागत से भी कम है। डॉ. त्रेहन को आशा है कि नयी स्वास्थ्य नीति लागू होने के बाद स्वास्थ्य सेवाओं के घरेलू बाज़ार का बड़े पैमाने पर विस्तार होगा और इस क्षेत्र में ख़र्च होने वाला सरकारी धन स्वास्थ्य सेवाओं के क्षेत्र में काम करने वाली निजी कम्पनियों के आर्थिक स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद साबित होगा।

ज़ाहिर है कि नयी स्वास्थ्य नीति का लाभ मरीज़ों को मिले या न मिले, लेकिन निजी कम्पनियाँ इससे बेशुमार फ़ायदा उठायेंगी और इसका नतीजा स्वास्थ्य सेवाओं के महँगे होने, भ्रष्टाचार और लालफीताशाही के बोलबाले के रूप में ही सामने आ सकता है जैसा कि दुनिया के दूसरे मुल्क़ों में दिखाई दे रहा है। जब तक स्वास्थ्य सेवाओं को पूँजीवादी मुनाफ़े के चंगुल से आज़ाद करने के बारे में नहीं सोचा जायेगा, तब तक मरीज इन स्वास्थ्यप्रदाता कम्पनियों के लिए चारे से अधिक कुछ नहीं है, जिसे खाकर वे अपनी माली हालत को बेहतर करते चले जाते हैं, अपनी तिजोरियों को भरते चले जाते हैं। यह अकारण नहीं है कि इस देश में इलाज करवाने के दौरान अपना सब कुछ बिक जाने के चलते हर साल 6 करोड़ लोग ग़रीबी रेखा से नीचे चले जाते हैं।

श्रम क़ानूनों में "सुधार" के नाम पर सौ साल के संघर्षों से हासिल अधिकार छीनने की तैयारी में है सरकार

(पेज 5 से आगे)

विभाग पर दबाव डाल सकते हैं। अब मालिकान को इस संभावना से भी मुक्त कर दिया गया है। कुछ साल पहले की एक रिपोर्ट के अनुसार श्रम विभाग में मौजूद कर्मचारियों को देखते हुए हालत यह है कि अगर वे रोज़ एक कारखाने का निरीक्षण करें तो भी उस कारखाने के अगले निरीक्षण का मौका पाँच साल बाद ही आयेगा। ऐसे में श्रम विभाग को और मज़बूत करने के बजाय उसके अधिकारों में कटौती के पीछे की मंशा कोई भी समझ सकता है।

ट्रेड यूनियन अधिकारों में और कटौती

नये क़ानून का सबसे प्रतिक्रियावादी पहलू है ट्रेड यूनियनों की भूमिका को खत्म करने की कोशिश करना। लम्बे संघर्ष से मज़दूरों ने अपनी माँगों को लेकर त्रिपक्षीय वार्ताओं का अधिकार हासिल किया था, यानी सरकार, प्रबंधन और मज़दूरों के प्रतिनिधि के रूप में ट्रेड यूनियन। अब सरकार ने राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा परिषद और केंद्रीय तथा राज्यों के सामाजिक सुरक्षा बोर्ड के रूप में सामाजिक सुरक्षा संगठनों का जो विचार पेश किया है उसमें ट्रेड यूनियनों के लिए कहीं कोई जगह नहीं है। राष्ट्रीय परिषद के पास व्यापक प्रशासकीय, नियामक और वित्तीय शक्तियाँ होंगी और वह पूरी तरह सरकारी नियंत्रण में होगी।

प्रस्तावित क़ानून में मज़दूरी का भुगतान क़ानून के इस प्रावधान को समाप्त कर दिया गया है जिसके तहत ट्रेड यूनियनें नियोक्ताओं के ऑडिट किये हुए खाते और बैलेंस शीट को देख सकती थीं। इससे वे वार्ताओं के दौरान मालिकों के ऐसे झूठे दावों को खारिज कर सकते थे कि कम्पनी की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होने के कारण मज़दूरों की माँगें नहीं मानी जा सकतीं। ट्रेड यूनियन बनाने के मज़दूरों के अधिकारों में अन्य कटौतियाँ पहले से जारी हैं।

मज़दूरों के लिए यूनियन बनाना और भी मुश्किल कर दिया गया है। मूल क़ानून के अनुसार किसी भी कारखाने या कम्पनी में 7 मज़दूर मिलकर अपनी यूनियन बना सकते थे। फिर इसे बढ़ाकर 15 प्रतिशत कर दिया गया। यानी किसी फ़ैक्टरी में काम करने वाले मज़दूरों का कोई ग्रुप अगर कुल मज़दूरों में से 15 प्रतिशत को अपने साथ ले ले तो वह यूनियन पंजीकृत करवा सकता है। मगर अब इसे बढ़ाकर 30 प्रतिशत किया जाना है। मतलब साफ़ है कि अगर फ़ैक्टरी मालिक ने अपनी फ़ैक्टरी में दो-तीन दलाल यूनियनें पाल रखी हैं तो एक नयी यूनियन बनाना बहुत कठिन होगा और फ़ैक्टरी जितनी बड़ी होगी, यूनियन बनाना उतना ही मुश्किल होगा। ठेका क़ानून भी अब 20 या इससे ज़्यादा मज़दूरों वाली फ़ैक्टरी पर लागू होने की जगह 50 या इससे ज़्यादा मज़दूरों वाली फ़ैक्टरी पर लागू होगा। यानी जिस फ़ैक्टरी में 50 से कम मज़दूर काम करते होंगे उस पर ठेका क़ानून लागू ही नहीं होगा। इसका अंजाम क्या होगा इसे आसानी से समझा जा सकता है।

कहने की ज़रूरत नहीं कि पूँजीपतियों की तमाम संस्थाएँ और भाड़े के बुर्जुआ अर्थशास्त्री उछल-उछलकर सरकार के इन प्रस्तावित बदलावों का स्वागत कर रहे हैं और कह रहे हैं कि अर्थव्यवस्था में जोश भरने और रोज़गार पैदा करने का यही रास्ता है। कहा जा रहा है कि आज़ादी के तुरन्त बाद बनाये गये श्रम क़ानून विकास के रास्ते में बाधा हैं इसलिए इन्हें कचरे की पेटी में फेंक देना चाहिए और श्रम बाज़ारों को "मुक्त" कर देना चाहिए। विश्व बैंक ने भी 2014 की एक रिपोर्ट में कह दिया था कि भारत में दुनिया के सबसे कठोर श्रम क़ानून हैं जिनके कारण यहाँ पर उद्योग व्यापार की तरक्की नहीं हो पा रही है। पूँजीपतियों के नेता बड़ी उम्मीद से कह रहे हैं कि निजी उद्यम को बढ़ावा देने और सरकार का हस्तक्षेप कम से कम करने के हिमायती नरेन्द्र मोदी भारत में "सुधारों" को तेज़ी से आगे बढ़ायेंगे। इनका कहना है कि उन क़ानूनों में बदलाव लाना सबसे ज़रूरी है जिनके कारण मज़दूरों की छुट्टी करना कठिन होता है।

मोदी द्वारा 'मेक इन इण्डिया' को रफ़्तार देने के लिए प्रस्तावित श्रम सुधारों की यह वास्तव में महज शुरुआत भर है। यह तो महज़ ट्रेलर है, पूरी पिक्चर जल्दी ही सामने आ जायेगी। बुर्जुआ और संसदमार्गी वामपंथी दलों से जुड़ी यूनियनें मजदूरों के अतिसीमित आर्थिक हितों की हिफ़ाज़त के लिए भी सड़क पर उतरने की हिम्मत और ताक़त दुअन्नी-चवन्नी की सौदेबाजी करते-करते खो चुकी है। वैसे भी देश की कुल मज़दूर आबादी में 90 फीसदी से अधिक जो असंगठित मज़दूर हैं, उनमें इनकी मौजूदगी बस दिखावे भर की ही है। अब सफेद कॉलर वाले मजदूरों, कुलीन मजदूरों और सर्विस सेक्टर के मध्यवर्गीय कर्मचारियों के बीच ही इन यूनियनों का वास्तविक आधार बचा हुआ है और सच्चाई यह है कि नवउदारवाद की मार जब समाज के इस संस्तर पर भी पड़ रही है तो ये यूनियनें इनकी माँगों को लेकर भी प्रभावी विरोध दर्ज करा पाने में अक्षम होती जा रही है। बहरहाल, रास्ता अब एक ही बचा है। गाँवों और शहरों की व्यापक मेहनतकश आबादी को सघन राजनीतिक कार्रवाइयों के जरिए, जीने के अधिकार सहित सभी जनवादी अधिकारों के लिए संघर्ष करने के उद्देश्य से, उनके विशिष्ट पेशों की चौहद्दियों का अतिक्रमण करके, इलाकाई पैमाने पर संगठित करना होगा। दूसरे, अलग-अलग सेक्टरों की ऐसी पेशागत यूनियनें संगठित करनी होगी, जिसके अन्तर्गत ठेका मज़दूर और सभी श्रेणी के अनियमित मज़दूर मुख्य ताकत के तौर पर शामिल हों। पुराने ट्रेड यूनियन आन्दोलन के क्रान्तिकारी नवोन्मेष की सम्भावनाएँ अब अत्यधिक क्षीण हो चुकी हैं। अब एक नयी क्रान्तिकारी शुरुआत पर ही सारी आशाएँ टिकी हैं, चाहें इसका रास्ता जितना भी लम्बा और कठिन क्यों न हो।

नवउदारवाद के दौर ने स्वयं ऐसी वस्तुगत स्थितियाँ पैदा कर दी हैं कि मज़दूर वर्ग यदि अपने राजनीतिक अधिकारों के लिए नहीं लड़ेगा तो सीमित आर्थिक माँगों को भी लेकर नहीं लड़ पायेगा। मज़दूर क्रान्तियों की पराजय के बाद मज़दूर आबादी के अराजनीतिकीकरण की जो प्रवृति हावी हुई है, उसका प्रतिरोध करते हुए ऐसे हालात बनाने के लिए अब माकूल और मुफीद माहौल तैयार हुआ है कि मज़दूर वर्ग एक बार फिर नये सिरे से क्रान्तिकारी राजनीतिक चेतना के नये युग में प्रवेश करे। जाहिर है, यह अपने आप नहीं होगा। इसके लिए सर्वहारा क्रान्ति के विज्ञान और आज के नये हालात (यानी नवउदारवाद के दौर में पूँजीवाद की नयी कार्यप्रणाली) का गहन अध्ययन और जाँच-पड़ताल करके सर्वहारा क्रान्तिकारियों के नये दस्तों को मैदान में उतरना होगा। आगे का रास्ता निश्चय ही लम्बा और कठिन है, लेकिन विश्व पूँजीवाद का मौजूदा असमाधेय ढाँचागत संकट बता रहा है कि पूँजी और श्रम के बीच संघर्ष का अगला चक्र श्रम की शक्तियों की निर्णायक विजय की परिणति तक पहुँचेगा। ऐसी स्थिति में लम्बा और कठिन रास्ता होना लाजिमी है, लेकिन हजार मील लम्बे सफर की शुरुआत भी तो एक छोटे से कदम से ही होती है।

पूँजीपतियों की लगातार कम होती मुनाफ़े की दर और ऊपर से आर्थिक संकट तथा मज़दूर वर्ग में बढ़ रहे बग़ावती सुर से निपटने के लिए पूँजीपतियों के पास आख़िरी हथियार फासीवाद होता है। भारत के पूँजीपति वर्ग ने भी नरेन्द्र मोदी को सत्ता में पहुँचाकर अपने इसी हथियार को आज़माया है। फासीवादी सत्ता में आते तो मोटे तौर पर मध्यवर्ग (तथा कुछ हद तक मज़दूर वर्ग भी) के वोट के बूते पर हैं, लेकिन सत्ता में आते ही वह अपने मालिक बड़े पूँजीपतियों की सेवा में सरेआम जुट जाते हैं। बात श्रम क़ानूनों को कमजोर करने तक ही नहीं रुकेगी, क्योंकि फासीवाद बड़ी पूँजी के रास्ते से हर तरह की रुकावट दूर करने पर आमादा होता है और यह सब वह "राष्ट्रीय हितों" के नाम पर करता है। फासीवादी राजनीति पूँजीपतियों के लिए काम करने और उनका मुनाफ़ा बढ़ाने को इस तरह पेश करती है कि यही देश के लिए काम करना, देश को "महान" बनाने के लिए काम करना है। इसके लिए सभी को बिना कोई सवाल-जवाब किये, बिना कोई हक़-अधिकार माँगे काम करना पड़ेगा। लोग अपनी तबाही-बर्बादी के बारे में सोचें नहीं, इसके विरोध में एकजुट होकर लड़ें नहीं, इसी मकसद से तरह-तरह के भावनात्मक मुद्दे भड़काये जाते हैं और धार्मिक बँटवारे किये जाते हैं। देश के मेहनतकशों को अपने अधिकारों पर इस खुली डकैती के ख़िलाफ़ लड़ना है या आपस में एक-दूसरे का सिर फुटौवल करना है, यह फ़ैसला उन्हें अब करना ही होगा।

एमसीडी चुनावों में 'क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा' की भागीदारी : एक राजनीतिक समीक्षा व समाहार

दिल्ली नगर निगम के चुनावों में इस बार तीन वॉर्डों (वज़ीरपुर, करावल नगर और खजूरी) से **क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा** ने अपने उम्मीदवार खड़े किये थे। इन तीनों वार्डों पर मज़दूर वर्ग के प्रतिनिधियों का प्रदर्शन अपेक्षानुरूप नहीं रहा। वज़ीरपुर में क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा के प्रतिनिधि सनी 113 वोटों के साथ 9 प्रतिनिधियों में छठे स्थान पर, करावल नगर में योगेश स्वामी 196 वोटों के साथ 23 उम्मीदवारों में 14वें स्थान पर और खजूरी में बीना सिंह 32 वोटों के साथ 13 प्रत्याशियों में 12वें स्थान पर रहे। निश्चित रूप से, यह परिणाम अपेक्षा के प्रतिकूल हैं। इन तीनों इलाक़ों में चुनाव में भागीदारी और नतीजों की एक समीक्षा ज़रूरी है, ताकि पूँजीवादी चुनावों में अगली रणकौशलात्मक भागीदारी के समय इस मंच का और बेहतर तरीक़े से क्रान्तिकारी प्रचार के लिए उपयोग किया जा सके और साथ ही मज़दूर वर्ग के स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष को यदि सम्भव हो तो विजयी बनाया जा सके। निश्चित रूप से, ऐसी विजय व्यवस्था के किसी क्रान्तिकारी परिवर्तन को चिन्हित नहीं करती। लेकिन यह मज़दूर वर्ग के वर्ग-संघर्ष को क्रान्तिकारी व्यवस्था परिवर्तन के लिए आगे बढ़ाने का काम, पूँजीवादी व्यवस्था की सीमाओं को जनता के समक्ष उजागार करने का काम और मज़दूर वर्ग को इस या उस पूँजीवादी पार्टी का पिछलग्गू बनने से रोकने का काम कर सकती है। इसीलिए चुनाव में क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा की भागीदारी का एक समाहार आवश्यक है।

चुनाव में रणकौशलात्मक भागीदारी का अनुभव बेहद सीखने वाला और प्रबोधनकारी रहा। नतीजों पर हम आगे आयेंगे, लेकिन क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा ने काफ़ी कुछ काम वोटिंग के दिन से पहले ही कर लिया था। चुनाव प्रचार के दौरान जो अनुभव रहा वह बेहद अहम है। इस प्रचार के दौरान यह पाया गया कि जो लोग पहले सामान्य दौर में किये जाने वाले आम राजनीतिक प्रचार या फिर चुनावों के दौरान किये जाने वाले भण्डाफोड़ प्रचार के दौरान ध्यान नहीं देते थे, वे भी चुनाव प्रचार के दौरान क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा के क्रान्तिकारी प्रचार पर ध्यान दे रहे थे। पहले चुनावों के भण्डाफोड़ के दौरान कई बार लोगों के बीच से यह प्रश्न आता था कि यह सच है कि सभी चुनावी पूँजीवादी पार्टियाँ पूँजीपति वर्ग की सेवक और भ्रष्ट हैं, लेकिन हमें अभी क्या करना चाहिए। इस प्रश्न के उत्तर में कोई तात्कालिक कार्यक्रम पेश नहीं किया जाता था और पूरे व्यवस्थागत परिवर्तन के लिए आमूलगामी क्रान्ति की तैयारी का आह्वान किया जाता था। इस बार चीज़ें अलग थीं। निश्चित तौर पर, क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा के प्रचार में पहली बात यही थी कि ग़रीबी, बेरोज़गारी, भुखमरी, सामाजिक असुरक्षा से अन्तिम तौर पर मुक्ति केवल समाजवाद, यानी एक ऐसी व्यवस्था में मिल सकती है, जिसमें सारे कल-कारख़ानों, खानों-खदानों और फ़ार्मों का राष्ट्रीयकरण कर उसे देश की जनता की साझी सम्पत्ति बना दिया जायेगा। ज़ाहिर है, ऐसा परिवर्तन महज़ चुनावों में भागीदारी के ज़रिये नहीं हो सकता। लेकिन चुनावों में मज़दूर वर्ग का अपना स्वतन्त्र पक्ष होना ही चाहिए, ताकि मज़दूर वर्ग इस या उस पूँजीवादी पार्टी का पिछलग्गू न बने। पूँजीवादी व्यवस्था के छल-छद्म और सीमाओं को जनता के बीच उजागर किया जा सके और साथ ही पूँजीवादी व्यवस्था के दायरे के भीतर जो श्रम व जनवादी अधिकार मिले हुए हैं, उन्हें वास्तव में लागू किया जा सके और मज़दूर वर्ग के समूचे वर्ग-संघर्ष को विकसित किया जा सके। इसीलिए मज़दूर वर्ग का एक स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष जनता के बीच उपस्थित किया गया है। यह बात व्यापक मेहनतकश आबादी के बड़े हिस्से के लिए एक ऐसी बात थी जिस पर उन्होंने ध्यान दिया, उसे सुना। यह दीगर बात है कि अभी वे इस विकल्प की सम्भावना-सम्पन्नता और उसे कारगर होने को लेकर सशंकित थे। लेकिन फिर भी उनके सामने एक विकल्प का पेश किया जाना ही एक अहम क़दम था। जैसे-जैसे चुनाव प्रचार आगे बढ़ा इलाक़े के विशेष तौर पर कारख़ाना मज़दूर मोर्चे के प्रतिनिधि सनी सिंह के समर्थन में आते गये। मोर्चे की रैलियों में बड़ी संख्या में मज़दूरों का उपस्थित होना इसी की अभिव्यक्ति था। यह बात ज़रूर है कि 90 फ़ीसदी से भी ज़्यादा मज़दूरों के वोटर कार्ड ही नहीं थे और इसका नतीजों पर भारी फ़र्क़ पड़ा। लुब्बेलुबाब यह कि इस पहली चुनाव भागीदारी में क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा ने अपने क्रान्तिकारी प्रचार से अपने सामाजिक आधार को विस्तारित किया। झुग्गीवासियों में यदि पहले से सामाजिक आधार होता तो चुनावी नतीजे अलग हो सकते थे, यह सच है। यह सच है कि क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा ने इस व्यापक आबादी के बीच पहले से काम न करने की क़ीमत चुकाई, लेकिन यह भी सच है कि इस चुनाव प्रचार के दौरान ही झुग्गीवासियों के बीच क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा ने अपनी पहचान बनायी और अपने नाम को उन तक पहुँचाने में कामयाबी हासिल की। यह सीखने और नींव डालने का काम था और इतना काम एक हद तक ज़रूर हुआ। अब कुछ बातें नतीजे पर।

वज़ीरपुर में जहाँ पर पिछले तीन वर्षों से क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा के कार्यकर्ता मज़दूरों के बीच सक्रिय रहे हैं, वहाँ मज़दूर आबादी के वोट कुल वोटों के 10 प्रतिशत से भी कम हैं क्योंकि अधिकांश प्रवासी मज़दूरों के वोटर कार्ड नहीं बने हैं। अधिकांश वोट झुग्गीवासियों और इस वार्ड में शामिल कुलीन इलाक़े अशोक विहार के एक फेज़ के बाशिन्दों के हैं। झुग्गीवासियों और मज़दूरों के बीच पिछले एक सप्ताह में आम आदमी पार्टी और भारतीय जनता पार्टी ने पैसा और शराब बाँटने का नया रिकॉर्ड क़ायम किया। झुग्गीवासियों के घरों में लिफ़ाफ़े में किसी ने तीन हज़ार रुपये और वोटर पर्ची रखकर पहुँचायी तो किसी ने पाँच हज़ार रुपये और वोटर पर्ची। इसके साथ ही दलालों और गुण्डों की एक पूरी फ़ौज इस इलाक़े में इन दोनों ही प्रमुख पार्टियों ने लगायी, जिन्होंने अपनी जातिगत और धर्मगत गोलबन्दियाँ विशेष तौर पर झुग्गीवासियों में बनायी। कुल वोटिंग वज़ीरपुर में 40 से 45 प्रतिशत के बीच रही। इलाक़े के कारख़ानेदारों ने वोटिंग के दिन भी कारख़ानों को बन्द नहीं किया जिसके कारण अच्छी-ख़ासी मज़दूर आबादी वोट नहीं कर सकी। साथ ही मज़दूर आबादी और झुग्गीवालों की एक ठीक-ठाक आबादी का नाम ही वोटर लिस्ट में नहीं था, जिसके कारण वे वोट नहीं डाल सके। मज़दूर वर्गीय वोटरों के राजनीतिक रूप से सचेत छोटे हिस्से ने क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा के उम्मीदवार को वोट डाला। लेकिन यह भी सच है कि मज़दूर वोटरों की छोटी-सी आबादी के भी एक हिस्से ने राजनीतिक चेतना की कमी और हताशा के कारण तात्कालिक लाभ देखते हुए वोट किया। नतीजतन, क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा के उम्मीदवार सनी सिंह नौ उम्मीदवारों में छठे स्थान पर रहे।

दिल्ली नगर निगम चुनावों ने इस बात को एक बार फिर स्पष्ट किया कि आमतौर पर पूँजीवादी चुनावों में धनबल की विजय होती है। क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा के प्रवक्ता ने बताया कि इन चुनाव नतीजों से हम बहुत कुछ तय नहीं कर रहे हैं। यह क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा का पहला प्रयास था और एक प्रकार से नींव डालने की मंज़िल थी। इस मंज़िल में हम चुनाव प्रचार के दौरान अपने आपको एक मज़दूर विकल्प के तौर पर पेश करने में सफल रहे लेकिन अभी यह विकल्प मज़दूर आबादी के एक हिस्से के लिए भी एक प्रभावी और व्यावहारिक विकल्प के तौर पर नहीं उभर पाया। मोर्चा के प्रवक्ता ने स्पष्ट किया कि हमने जीत की उम्मीद नहीं की थी, लेकिन यह सच है कि नतीजे हमारी अपेक्षा से कम रहे। लेकिन क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा इलाक़े के मज़दूर वर्ग को समर्थन के लिए क्रान्तिकारी धन्यवाद देता है और साथ ही मज़दूर वर्ग और झुग्गीवासी मेहनतकश आबादी के रोज़मर्रा के मुद्दों पर संघर्ष के नये दौर की शुरुआत का संकल्प लेता है। आम आदमी पार्टी के विजयी प्रत्याशी और अब वार्ड के पार्षद के समक्ष जन संघर्षों के साथ वायदों को पूरा करने और जवाबदेही स्पष्ट करने के लिए निरन्तर दबाव बनाया जायेगा। इसके लिए गली कमेटियों का गठन कर इलाक़े की समस्याओं के समाधान के लिए काम किया जायेगा।

क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा को चुनाव में भागीदारी से जो कुछ अर्जित करना था, उसका एक हिस्सा चुनाव के दिन के पहले ही हासिल किया जा चुका था, जैसा कि हमने ऊपर ज़िक्र किया। चुनावों के दौरान एक सही मार्क्सवादी-लेनिनवादी अवस्थिति के साथ वज़ीरपुर के व्यापक औद्योगिक क्षेत्र में प्रचार किया गया और जनता के राजनीतिक चेतना का स्तरोन्नयन किया गया। जो ग़लतियाँ क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा की रणनीति में रहीं, उन पर विचार करने की आवश्यकता है।

प्रचार के दौरान ही एक भारी ग़लती सामने आने लगी थी। क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा का सामाजिक आधार मुख्य तौर पर कारख़ाना मज़दूरों में है। इन मज़दूरों में से अधिकांश के पास या तो वोटर कार्ड हैं ही नहीं या फिर उनके गाँव के पते पर बना हुआ है। इन मज़दूरों ने प्रचार के दौरान ही शिकायत की कि यदि मोर्चा को इस बार चुनावों में मज़दूर पक्ष को लेकर उतरना ही था, तो उसे पहले से ही वोटर कार्ड बनवाने की पूरी मुहिम चलानी चाहिए थी। वोटर लिस्ट से यह पता लगा कि इस वार्ड के कुल वोटों में से मात्र 9-10 प्रतिशत कारख़ाना मज़दूरों के वोट हैं, हालाँकि उनकी संख्या कहीं ज़्यादा है। जब तक यह पहलू मोर्चा के नेतृत्व के सामने आया तब तक काफ़ी देर हो चुकी थी, क्योंकि आचार संहिता लागू होने के बाद वोटर आईकार्ड बनना बन्द हो चुका था। एक दूसरी ग़लती या कमी जो सामने आयी, वह यह थी कि मोर्चा का सामाजिक आधार झुग्गीवासियों में कम विकसित हो पाया था। झुग्गीवासियों में अन्य इलाक़ों में छोटा-मोटा रोज़गार करने वालों, छोटे दुकानदारों, छोटा-मोटा व्यवसाय करने वालों, झुग्गी के मालिकों, समेत मज़दूर-वर्गीय, अर्द्धमज़दूर-वर्गीय और टटपुँजिया आबादी है। इसमें एक छोटा हिस्सा लम्पट टटपुँजिया आबादी और लम्पट मज़दूर आबादी का भी है, जिसके भीतर वर्ग चेतना बेहद अविकसित और अनगढ़ रूप में है या उसके ध्वंसावशेष ही बचे हैं। लेकिन फिर भी झुग्गीवासियों की आबादी में व्यापक आबादी आम मेहनतकश लोगों की ही है। इस आबादी को मज़दूर वर्गीय अवस्थिति पर या फिर मज़दूर वर्ग द्वारा पेश क्रान्तिकारी कार्यक्रम पर जीता जा सकता है। दूसरे शब्दों में, यह आबादी उन वर्गों से बनी है जो कि नयी समाजवादी क्रान्ति की इस मंज़िल में मित्र वर्ग हैं और उन्हें सतत् राजनीतिक प्रचार, क्रान्तिकारी सुधार कार्य और बच्चों व युवाओं के बीच कार्य के ज़रिये क्रान्तिकारी अवस्थिति पर जीता जा सकता था। लेकिन इस दिशा में क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा ज़्यादा काम नहीं कर सका और उसका सामाजिक आधार मूलत: और मुख्यत: कारख़ाना मज़दूरों के बीच बना रहा। दूसरे शब्दों में, क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा क्रान्तिकारी वर्ग मोर्चा बनाने की नीति को सफलतापूर्वक लागू नहीं कर सका।

इसके बावजूद, चुनाव प्रचार के दौरान ही मज़दूर आबादी और झुग्गीवासियों की आबादी में जो प्रचार हुआ, उसके ज़रिये क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा को अपने आपको एक विकल्प के तौर पर पेश करने का अवसर मिला। चाहे अभी यह विकल्प लोगों के बीच एक प्रमुख व्यावहारिक विकल्प बनकर न भी उभर पाया हो, लेकिन उनके बीच एक विकल्प के रूप में ज़रूर स्थापित हुआ। मोर्चा की रैलियों में इलाक़े की मज़दूर आबादी ने बढ़-चढ़कर हिस्सेदारी की और जो मज़दूर वोट पड़े, वे मुख्यत: और मूलत: क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा को ही पड़े। झुग्गीवासियों के वोट न मिलने का एक कारण यह अफ़वाह थी कि भाजपा यदि जीतती है, तो वह झुग्गियों को तुड़वाने वाली है। यह अफ़वाह आम आदमी पार्टी द्वारा फैलायी गयी थी। नतीजतन, झुग्गीवासियों के बीच एक यह सन्देश गया कि किसी भी क़ीमत पर भाजपा को हराना है और अभी क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा भाजपा को नहीं हरा सकता। लिहाज़ा झुग्गीवासियों को अपना वोट उस पार्टी को डालना चाहिए जो कि भाजपा को हरा सकती है। नतीजतन, आख़िरी समय में झुग्गीवासियों के वोट एकतरफ़ा रूप से आम आदमी पार्टी के पक्ष में सुदृढ़ हो गये। इन राजनीतिक कारणों के साथ ही क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा के विरुद्ध भाजपा और आम आदमी पार्टी के स्थानीय दलाल मिलकर सक्रिय थे। ग़ौरतलब है कि इन दोनों पूँजीवादी पार्टियों के प्रतिनिधि स्वयं कारख़ाना मालिक हैं। उन्हें इस बात का अच्छे से अन्दाज़ा था कि यदि मज़दूर प्रतिनिधि जीतता है तो कारख़ाना मालिकों की मुश्किलें बढ़ेंगी। ऐसे में, कोई भी जीते लेकिन क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा का प्रदर्शन अच्छा नहीं रहना चाहिए। नतीजतन, मज़दूरों को कारख़ानों से निकलकर वोट नहीं डालने दिये गये; मज़दूर आबादी के बीच में वोटर लिस्ट से स्लिपों का वितरण नहीं किया गया, जिससे तमाम मज़दूरों को यह पता ही नहीं चल पाया कि उनका वोट किस सेण्टर पर पड़ता है। कई मज़दूर अन्त तक लिस्टों में अपना नाम ही ढूँढ़ते रह गये। दूसरी तरफ़, अशोक विहार के अमीरों के इलाक़े में सभी पूँजीवादी पार्टियों ने

(पेज 10 पर जारी)

एमसीडी चुनावों में क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा की भागीदारी : एक राजनीतिक समीक्षा व समाहार

(पेज 9 से आगे)

वोटर स्लिप वितरण किया; कई स्थानों पर तो चुनाव आयोग ने ही ये पर्चियाँ पहुँचा दीं। लेकिन मज़दूर आबादी के बीच ऐसा नहीं किया गया जिससे कि भारी मज़दूर आबादी सेण्टर को लेकर भ्रम में रही और वोट नहीं डाल सकी। इससे क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा के वालण्टियरों की भी एक ग़लती सामने आयी। वास्तव में, अपने सामाजिक आधार में वोटरों के बीच इन पर्चियों का वितरण वोटिंग के दिन से पहले ही कर दिया जाना चाहिए था। मगर ऐसा नहीं हो सका। आखिरी दिन इण्टरनेट के ज़रिये वोटर लिस्ट देखकर कुछ लोगों की सहायता की गयी कि वे अपने बूथ तक पहुँच सकें, लेकिन आखिरी समय पर किया गया यह प्रयास नाकाफ़ी था।

इसके अलावा कई तकनीकी कारक थे, जिन्हें दुरुस्त रूप से प्रबन्धित किया गया होता, तो नतीजे परिमाणात्मक रूप से बेहतर होते। लेकिन मूल कारण राजनीतिक थे, जिन्हें ऊपर चिन्हित किया गया है।

आन्तरिक तौर पर भी क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा की टीम के लिए यह चुनाव सीखने का एक बेहतरीन मौक़ा साबित हुआ। यह स्पष्ट तौर पर सामने आया कि पूँजीवादी चुनावों में रणकौशलात्मक भागीदारी के लिए एक ठोस विचारधारात्मक और राजनीतिक तैयारी की आवश्यकता है। यह तैयारी पिछले 2 माह से जारी थी, जिससे कि रणकौशलात्मक भागीदारी के लेनिनवादी अर्थ को रचाया-पचाया गया था। लेकिन इसके बावजूद चुनाव प्रचार की प्रक्रिया और गर्मी में कुछ मौक़ों पर राजनीति उस प्रकार कमान में नहीं रही, जैसे कि उसे रहना चाहिए था और तरह-तरह की व्यावहारिक व तकनीकी चिन्ताएँ हावी हुईं। इन ग़लतियों को चुनाव के दौरान ही इंगित किया गया और उनकी समीक्षा-समाहार कर दूर करने का प्रयास किया गया। यह भी दिखलायी दिया कि अभी चुनाव प्रचार के तौर-तरीक़ों, शैली, एजेण्डा पेश करने के लहज़े, क्रान्तिकारी अवस्थिति को प्रभावी रूप से पेश करने के मामले में बहुत-कुछ सीखने की ज़रूरत है। अगर इन सारे पहलुओं पर ध्यान न दिया जाये तो दक्षिणपन्थी भटकाव का शिकार होने की सम्भावना पैदा हो जाती है और वह भी इस प्रकार कि जिसका पता ही काफ़ी बाद में चले। इसलिए इन सारे पहलुओं पर अभी बहुत-कुछ सीखने की ज़रूरत है। लेनिनवादी अवस्थिति से वाक़िफ़ होने के साथ-साथ आज के दौर के चुनावों में उसे लागू करने के तौर-तरीक़ों में भी पारंगत होना होगा और यह कार्य व्यवहार के ज़रिये ही हो सकता है।

अन्य क्षेत्रों में चुनाव में भागीदारी में काफ़ी पहलू वही रहे जिनका हम वज़ीरपुर में चुनाव भागीदारी की समीक्षा व समाहार करते हुए ज़िक्र कर चुके हैं। उन पहलुओं को हम दुहरायेंगे नहीं। करावल नगर और खजूरी में भी चुनाव प्रचार के दौरान ही जो लक्ष्य अर्जित करने थे, यानी कि अपने सामाजिक आधार को व्यापक बनाना, अपनी पहुँच को व्यापक बनाना और पहले दौर में एक विकल्प के तौर पर अपना नाम और पहचान लोगों के मस्तिष्क में स्थापित करना; ये लक्ष्य काफ़ी हद तक अर्जित किये गये। इन इलाक़ों में भी, विशेषकर करावल नगर में, प्रचार के दौरान ही जनता का व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ। लेकिन इन इलाक़ों में भी एक कमी वही थी, जोकि वज़ीरपुर में थी। मुख्य सामाजिक आधार असंगठित मज़दूर आबादी में होने के कारण उनका वोटों में रूपान्तरित नहीं हो पाना, क्योंकि इनमें से ज़्यादातर प्रवासी मज़दूर हैं और उनके वोटर कार्ड ही नहीं बने हैं।

करावल नगर में मोर्चा के प्रतिनिधि 23 प्रत्याशियों में से 14वें स्थान पर रहे। इस इलाक़े में भी भाजपा, आम आदमी पार्टी के प्रत्याशियों ने चुनावी प्रचार के दौरान धनबल और बाहुबल का नंगा प्रदर्शन किया। क्षेत्रवाद और जातिवाद के नाम पर भी जमकर वोट बटोरे गये। मिसाल के तौर पर गुर्जर वोट, पहाड़ी वोट, बिहारी वोट, दलित वोट, वग़ैरह। हर पूँजीवादी चुनाव की तरह यहाँ भी पैसे का बोलबाला रहा। इस क्षेत्र की आबादी ने मोर्चा के उम्मीदवार को अपेक्षाकृत बेहतर समर्थन दिया। लेकिन यहाँ भी एक प्रमुख समस्या यह रही कि मज़दूर आबादी के वोटर कार्ड नहीं बने होने के कारण मोर्चा के प्रमुख सामाजिक समर्थन को वोटों में रूपान्तरित नहीं किया जा सका। जिन्होंने मोर्चा को वोट दिया उनमें युवा व मज़दूर वोटर प्रमुख रहे। प्रत्याशी योगेश स्वामी ने कहा कि नतीजे अपेक्षा से कम रहे, लेकिन इसमें बहुत चौंकाने वाला कुछ नहीं था। यह क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा का पहला प्रयास था जिसमें कि उसने पूँजीवादी चुनाव के मैदान में मेहनतकशों के स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष को रखा। चुनावी प्रचार के दौरान आम मेहनतकश जनता का अच्छा समर्थन भी मोर्चा को प्राप्त हुआ। लेकिन पूँजीवादी चुनावों की गतिकी में पैसे की भूमिका स्पष्ट तौर पर उभरकर सामने आयी। साथ ही, आम मेहनतकश आबादी का भी एक हिस्सा मोर्चा को चुनावों में एक विकल्प के तौर पर देखने के बावजूद उसे "जीतने वाला विकल्प" न मानने की प्रवृत्ति और बह रही बयार के अनुसार "अपना वोट ज़ाया" न करने की अराजनीतिक प्रवृत्ति की शिकार थी। चुनाव नतीजे आने के बाद इस क्षेत्र में भी सतत् जनसंघर्षों के ज़रिये मेहनतकश आबादी की राजनीतिक चेतना के स्तरोन्नयन के काम को तत्काल शुरू किया जायेगा और विजयी प्रत्याशी को इलाक़े की आम जनता की समस्याओं के प्रश्न पर घेरा जायेगा और उनसे जवाबदेही ली जायेगी। इन सतत् जनसंघर्षों और संगठन की प्रक्रिया को जारी रखते हुए क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा अपने सामाजिक आधार को विस्तारित करेगा और आने वाले संसद चुनावों और विधानसभा चुनावों में अपने आपको एक व्यावहारिक और प्रभावी विकल्प के तौर पर स्थापित करने का प्रयास करेगा।

खजूरी में प्रदर्शन एक रूप में अपेक्षानुरूप रहा, क्योंकि यह मुस्लिम बहुल क्षेत्र था, जिसमें कि मोर्चा के सामाजिक आधार के बावजूद प्रमुख कारक जोकि वोटरों के ज़ेहन में हावी था, वह यह कि भारतीय जनता पार्टी के उम्मीदवार की विजय नहीं होनी चाहिए और जो भी उम्मीदवार भाजपा को हरा सकता है, उसे वोट दिया जाना चाहिए। इस असुरक्षा की भावना को आज के साम्प्रदायिक फासीवादी उभार के दौर में समझा जा सकता है। ऐसे में, संगठन के पुराने समर्थकों ने, जो कि तमाम जनसंघर्षों में मोर्चा के साथ रहे हैं, मोर्चा को वोट किया। लेकिन उसके अतिरिक्त मोर्चा के सामाजिक आधार ने भी अधिकांशत: आम आदमी पार्टी को वोट डाला, जोकि भाजपा को इस क्षेत्र में हराने में सफल रही। मोर्चा के प्रवक्ता ने कहा कि आखिरी दिनों में यह स्पष्ट हो गया था कि इस क्षेत्र में व्यापक मेहनतकश अल्पसंख्यक आबादी वोट डालने के मामले में अभी एक भारी असुरक्षा की भावना से संचालित है और हमारे समर्थकों में भी बहुसंख्यक आबादी हमें नहीं बल्कि उस उम्मीदवार को वोट देने वाली है, जो कि भाजपा के ख़तरे को टालने में समर्थ दिख रहा हो। लेकिन चुनाव प्रचार के दौरान मज़दूर वर्ग के एक स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष को मोर्चा ने प्रभावी तरीक़े से पेश किया और चुनावी नतीजों के नकारात्मक होने के बावजूद अब विजयी उम्मीदवार पर आम जनता की समस्याओं के निदान के लिए जन-दबाव बनाने के लिए मोर्चा तत्काल सक्रियता के साथ राजनीतिक कार्य करेगा। क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा के प्रवक्ता ने बताया कि चुनावों में पहली बार भागीदारी करते हुए मज़दूर वर्ग के स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष को इन तीनों वार्डों की जनता के बीच रखा गया। यह मोर्चा का प्रथम प्रयास था और एक सीखने का चुनाव था। इस चुनाव के अनुभव ने मोर्चा के कार्यकर्ताओं को बहुत कुछ सिखाया है और यह भी दिखलाया है कि कहाँ-कहाँ हमारी कमियाँ थीं। प्रचार के दौरान मोर्चा के उम्मीदवारों को अच्छा समर्थन मिला था, जिसे कि क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा की प्रभावी रैलियों में जन भागीदारी से देखा जा सकता है। प्रदर्शन अपेक्षानुरूप न रहने के कई कारण रहे जिसमें कि एक क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा के प्रमुख समर्थन आधार, यानी कि मज़दूर आबादी के वोटर कार्ड न होना था। साथ ही, पहला प्रयोग होने के कारण इस दौर में पहली दफ़ा व्यापक आम मेहनतकश जनता के बीच अपने विकल्प को पेश कर पाना ही सम्भव था। इस विकल्प को एक प्रभावी व कारगर विकल्प के तौर पर स्थापित करने का काम अभी बाक़ी रहता है और इसे आगे के चुनावों में किया जायेगा। तीसरा, क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा की अनुभवहीन युवा और मज़दूर टीम को राजनीतिक प्रचार के और रचनात्मक तौर-तरीक़े निकालते हुए जनता के बीच सतत् मौजूदगी बनानी होगी। इसी से जुड़ा हुआ चौथा अहम कार्यभार यह उभरकर सामने आया कि धनबल के पूँजीवादी चुनावों में एक निर्णायक कारक बनने को रोकने या उसके प्रभाव को कम करने के लिए व्यापक मेहनतकश जनता में निरन्तरता के साथ राजनीतिक कार्य करते हुए उनकी राजनीतिक चेतना को बढ़ाना होगा। साथ ही, चुनावों में ईवीएम में गड़बड़ी की रपटें इन तीनों ही वॉर्ड से सामने आयी हैं। कई लोग यह प्रश्न उठा रहे हैं कि अगर ईवीएम में गड़बड़ी होती तो जिन सीटों पर भाजपा हारी है उन पर भी वह विजयी हो जाती। लेकिन भाजपा ईवीएम में गड़बड़ी इतनी मूर्खतापूर्ण तरीक़े से क्यों करने लगी, जिसे आराम से पकड़ लिया जाये। सभी ईवीएम मशीनों के साथ छेड़छाड़ नहीं की जा रही, बल्कि इस काम को चुनिन्दा तरीक़े से और कुशलता से किया जा रहा है।

इन सारे कारकों के बावजूद क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा ने दिल्ली नगर निगम के पूँजीवादी जनवादी चुनावों का क्रान्तिकारी प्रचार के लिए प्रभावी इस्तेमाल किया। क्रान्तिकारी मज़दूर पक्ष के लिए जीत-हार पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर होने वाले चुनावों में प्रमुख मुद्दा नहीं होता। प्रमुख मुद्दा होता है इस मंच का मज़दूर वर्ग के स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष की नुमाइन्दगी के लिए और मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी प्रचार के लिए उपयोग करना; इसके ज़रिये मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश वर्ग के अधिकतम सम्भव हिस्से को इस या उस पूँजीवादी पार्टी का पिछलग्गू बनने से रोकना; मज़दूर वर्ग के दूरगामी क्रान्तिकारी लक्ष्य, यानी समाजवादी व्यवस्था के बारे में शिक्षण-प्रशिक्षण और प्रचार; और पूँजीवादी व्यवस्था की सीमाओं को आम मेहनतकश जनता के समक्ष उजागर करना और उसे एक आमूलगामी क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिए तैयार करना। क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा ने अपने पहले और सीखने के प्रयोग में इन सारे कार्यभारों को पूरा करने का प्रयास किया है। इस प्रयोग में तमाम कमियाँ भी रही हैं, जिन्हें निरन्तर जनसंघर्षों में भागीदारी के साथ दूर किया जायेगा और आगामी पूँजीवादी चुनावों में इससे बेहतर प्रदर्शन की ज़मीन तैयार की जायेगी।

•

चुनाव के बाद क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा ने तीनों इलाक़ों में मुहल्ला सभाओं व गली मीटिंगों का आयोजन शुरू किया है। इन सभाओं का मक़सद है कि जनता की माँगों और आवश्यकताओं के आधार पर एक माँगपत्रक तैयार किया जायेगा और इलाक़े के नवनिर्वाचित पार्षद के कार्यालय को यह माँगपत्रक ज्ञापन समेत सौंपा जाये। इसके ज़रिये जीते हुए पार्षद को अपने द्वारा किये गये वायदे पूरे करने और साथ ही जनता की माँगों को मनवाने के लिए दबाव बनाया जायेगा और इसी प्रक्रिया में जनसमुदाय को संगठित और गोलबन्द किया जायेगा। साथ ही, ये गली कमेटियाँ और मुहल्ला सभाएँ इलाक़े में साफ़-सफाई के कार्य, लाइब्रेरी संचालित करने के कार्य, शिक्षा सहायता मण्डल संचालित करने के कार्यों को भी करेंगी और इसी प्रक्रिया में राजनीतिक निर्णय लेने के कार्यों को भी सीखेंगी। चुनावों में भागीदारी के साथ क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा के कार्य की इस सरणि का समापन नहीं हुआ है, बल्कि शुरुआत हुई है।

क्या मज़दूर कल्याण के 20 हज़ार करोड़ रुपये चाय पार्टियों पर ख़र्च हो गए: सुप्रीम कोर्ट

सुप्रीम कोर्ट ने पूछा है कि मज़दूर कल्याण से संबंधित 20 हजार करोड़ रुपये की भारी भरकम राशि कहां चली गयी। क्या इसे चाय पार्टियों पर खर्च कर दिया गया या फिर अधिकारियों की छुट्टियों पर खर्च कर दिया गया? न्यायालय ने आश्चर्य जताया कि नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (कैग) तक को इस बारे में पता नहीं है. शीर्ष अदालत गैर सरकारी संगठन नेशनल कैंपेन कमेटी फॉर सेंट्रल लेजिस्लेशन ऑन कंस्ट्रक्शन लेबर की जनहित याचिका पर सुनवाई कर रही थी।

ऐसा पहली बार नहीं हुआ है। दिल्ली में कॉमनवेल्थ गेम्स के समय निर्माण मज़दूरों के कल्याण के लिए सेस लगाकर 550 करोड़ रुपये इकट्ठा किये गये थे मगर उसमें से एक भी पैसा मज़दूरों पर खर्च नहीं हुआ।

क्या ये खबरें आपको किसी टीवी चैनल की बहस में नज़र आयीं? ऐसा क्यों? सोचियेगा।

भ्रष्टाचार से लड़ने वाली सरकार खुद सबसे ग़रीब श्रमिकों की कमाई कैसे चुराती है?

रोज़गार गारंटी योजना में मजदूरी न्यूनतम मजदूरी से भी इतनी कम है कि सबसे जरूरतमंद ग़रीब लोग ही दूसरे रोज़गार की कमी से लाचार होकर इसमें काम करते हैं। पर हमारी गरीबपरवर सरकारें इसमें भी 6 महीने या इससे ज़्यादा भी मजदूरी का भुगतान नहीं करतीं। इसमें एक नियम है कि अगर इन ग़रीब मजदूरों को 15 दिन से ज़्यादा पेमेंट में देरी हो तो उस पर मुआवज़ा या ब्याज दिया जाये। पर खुद केंद्र सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय की इस रिपोर्ट के मुताबिक़ पिछले 3 साल में इस देरी का ब्याज़ का हिसाब 1480 करोड़ रुपये हुआ था लेकिन भुगतान की मंजूरी कुल 64 करोड़ की दी गई और असल भुगतान सिर्फ 39 करोड़ रुपये किया गया। बाक़ी 1441 करोड़ रुपये सरकार ने चुरा लिये।

क्यों न चुराती? फिर अम्बानी, अडानी, टाटा, बिड़ला, रुइया, माल्या, जैसे ग़रीबों का क्या होता!

अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस पर विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन

मज़दूरों ने मई दिवस के शहीदों को याद किया और संघर्षों को तेज़ करने का संकल्प लिया

लुधियाना

अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस के महान दिन पर ईडब्ल्यूएस कालोनी (ताजपुर रोड), लुधियाना में मज़दूर संगठनों द्वारा मज़दूर दिवस सम्मेलन का आयोजन किया गया। सैकड़ों मज़दूरों ने मई दिवस के मज़दूर शहीदों - अल्बर्ट पार्सन्स, अगस्त स्पाईस, एडॉल्फ़ फ़िशर, जॉर्ज एंजिल, और लुईस लिंग को भावभीनी श्रद्धांजलि भेंट की और अधिकारों के लिए संघर्ष जारी रखने का संकल्प लिया। 'मई दिवस के शहीदों को लाल सलाम', 'मज़दूर दिवस के शहीदों का पैग़ाम, जारी रखना है संग्राम', 'इंक़लाब ज़िन्दाबाद', आदि गगनभेदी नारों के साथ मज़दूर वर्ग का क्रान्तिकारी लाल झण्डा फहराया गया। इसके बाद मई दिवस के शहीदों की याद में दो मिनट का मौन रखा गया। क्रान्तिकारी सांस्कृतिक मंच 'दस्तक' की ओर से क्रान्तिकारी गीत पेश किये गये। पूँजीपति वर्ग द्वारा मज़दूरों की लूट के बारे में नाटक 'अब हम नहीं सहेंगे' पेश किया गया। सम्मेलन को टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन के अध्यक्ष लखविन्दर, कारख़ाना मज़दूर यूनियन के अध्यक्ष राजविन्दर, स्त्री मज़दूर संगठन (लुधियाना ईकाई) की कल्पना, नौजवान भारत सभा (लुधियाना) की संयोजक रविन्दर और पेंडू मज़दूर यूनियन (मशाल) के नेता सुखदेव भूँदड़ी ने सम्बोधित किया।

वक्ताओं ने कहा कि पूरी दुनिया में भूख-प्यास, लूट, दमन, जंग, क़त्लेआम, धर्म-नस्ल-देश-जाति-क्षेत्र के नाम पर नफ़रत आदि के सिवाय इस पूँजीवादी-साम्राज्यवादी व्यवस्था से और कोई उम्मीद नहीं की जा सकती। अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस के शहीदों को सच्ची श्रद्धांजलि यही हो सकती है कि हम इस गली-सड़ी व्यवस्था को उखाड़ फेंकने के लिए पुरज़ोर ढंग से लोगों को जगाने और संगठित करने की कोशिशों में जुट जायें।

पूँजीपति वर्ग मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी इतिहास को दबाने की कोशिशें हमेशा से करता आया है। अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस की विरासत से मज़दूरों की बड़ी आबादी अपरिचित है। मज़दूरों को क्रान्तिकारी विरासत से परिचित कराने की ज़रूरत को समझते हुए संगठनों द्वारा लुधियाना में मई दिवस के अवसर पर तीन सप्ताह तक प्रचार अभियान चलाया गया था। इस दौरान बड़े स्तर पर पर्चा बाँटा गया। पोस्टर लगाये गये। नुक्कड़ सभाएँ, कारख़ाना गेटों पर मीटिंगें, घर-घर प्रचार आदि के लिए मज़दूरों तक मई दिवस का सन्देश पहुँचाया गया।

दिल्ली

मई दिवस के अवसर पर दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन ने वज़ीरपुर फैक्टरी इलाके में रैली निकाली और फैक्टरियों को बंद करवाया। जहाँ भी काम चल रहा था वहां काम बंद करवाके मज़दूरों की छुट्टी करायी गयी। मज़दूरों ने अपनी-अपनी फैक्टरियों से निकल कर रैली में भागीदारी की। इलाके में जगह-जगह नुक्कड़ सभाएं कर मज़दूरों को मई दिवस के स्वर्णिम इतिहास के बारे में बताया गया। उन्हें शिकागों के अमर शहीदों की कुर्बानी के बारे में बताया गया जिसके बाद पूरी दुनियाभर के मज़दूरों ने अपने वर्ग के आधार पर एकजुट होकर काम के घंटे 8 करवाने के कानून को लागू करने के लिए तमाम पूँजीपति वर्ग को मजबूर किया। आज भी अगर मज़दूरों को अपने हक़ हासिल करने है तो उन्हें अपने इस गौरवशाली इतिहास से सबक लेते हुए अपने आप को अपने वर्ग के आधार लामबंद करना होगा। दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन और क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा द्वारा आयोजित इस रैली में मज़दूरों ने बढ़-चढ़ कर हिस्सेदारी की।

वज़ीरपुर में मई दिवस के मौके पर दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन और बिगुल मज़दूर दस्ता की ओर से सांस्कृतिक कार्यक्रम भी किया गया।

इलाहाबाद

बिगुल मज़दूर दस्ता और दिशा छात्र संगठन की ओर से मई दिवस के अवसर पर इलाहाबाद में संयुक्त रूप से साप्ताहिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस दौरान संयुक्त टोली की ओर से नुक्कड़ों, कार्यालयों में नागरिकों, मेहनतकशों और आम जनमानस के बीच नुक्कड़ नाटक, सभाओं, क्रान्तिकारी गीतों के जरिये मई दिवस की क्रान्तिकारी विरासत को पहुँचाया गया। इस दौरान 26 अप्रैल से 30 अप्रैल तक मई दिवस की याद में सिंचाई विभाग, ए. जी. ऑफिस चौराहा, शिक्षा निदेशालय, राजकीय मुद्रणालय, बी.एस.एन.एल. ऑफिस समेत कई स्थानों पर नुक्कड़ नाटक 'मशीन' के ज़रिये औद्योगिक मज़दूरों की अमानवीय जीवन स्थितियों को पेश किया गया। साथ ही यह सन्देश भी दिया गया है कि मेहनतकशों की एकजुटता बड़े-से-बड़े किलों को ढहा सकती है। इस दौरान प्रसेन ने कहा कि भूमंडलीकरण के वर्तमान दौर ने पुरानी असेम्बली लाइन की जगह एक विखंडित वैश्विक असेम्बली लाइन का निर्माण किया है। जहाँ एक ओर श्रम का अनौपचारिकीकरण हुआ है वहीं दूसरी ओर उत्पादन का भी अनौपचारिकीकरण हुआ है। श्रम के अनौपचारिकीकरण को इसी से समझा जा सकता है कि वर्त्तमान दौर में कुल मज़दूर आबादी का लगभग 93% असंगठित क्षेत्र में काम करता है. बड़े-बड़े कारखानों की जगह छोटे-छोटे कारखानों ने ले ली है। (इसका मतलब यह नहीं है कि बड़े कारखाने एकदम ख़त्म हो गए हैं।) पूँजी, सस्ते श्रम व कच्चे माल की उपलब्धता के मुताबिक़ दुनिया के विभिन्न देशों में आ-जा रही है। मसलन जूते की सोल कहीं बनाती है, अपर कहीं बनता है, असेम्बल कहीं होता है. ऐसे में पहले जहाँ बस्तियों से गेटों की ओर चलो का नारा हुआ करता था, वहीं आज नारा हो गया है – गेटों से बस्तियों की ओर चलो, फिर बड़ी ताक़त के साथ वापस गेटों की ओर लौटो। यानि आज मज़दूर आन्दोलन संगठित करने के लिए इलाका आधारित और पेशा आधारित यूनियनों के निर्माण पर जोर देना होगा।

साथ ही साथ मई दिवस समारोह समिति के बैनर तले विभिन्न प्रगतिशील एवं जनवादी संगठनों की ओर से इलाहाबाद विश्वविद्यालय के निराला डेलीगेसी सभागार में 21 अप्रैल को छात्र-मज़दूर कन्वेंशन का आयोजन किया गया जिसमें दिशा छात्र संगठन के कार्यकर्ताओं ने भागीदारी की। 1 मई के दिन इलाहाबाद में सिविल लाइन्स स्थित सुभाष चौराहे पर विभिन्न मज़दूर संगठनों, कर्मचारी संगठनों, प्रगतिशील जनसंगठनों और छात्र संगठनों की आयोजित मई दिवस की केन्द्रीय रैली में दिशा छात्र संगठन के कार्यकर्ताओं ने हिस्सा लिया। रैली स्थल पर जनचेतना की ओर से देश-दुनिया के प्रगतिशील और क्रान्तिकारी साहित्य की प्रदर्शनी भी लगाई गयी। प्रदर्शनी के दौरान बिगुल पुस्तिकाओं, मज़दूर बिगुल अखबार और मार्क्सवादी साहित्य में लोगों ने रुचि दिखाई।

हरिद्वार

मई दिवस के अवसर पर बिगुल मज़दूर दस्ता द्वारा हरिद्वार के रोशनाबाद के मुख्य सड़क पर व्यापक पर्चा वितरण किया गया और मई दिवस की विरासत पर बात रखी गई। इसके पहले मई दिवस की पूर्व संध्या पर रोशनाबाद की बस्ती में नुक्कड़ सभा और फिल्म शो का कार्यक्रम किया गया जिसमें 'मॉडर्न टाइम्स' फिल्म दिखाई गई।

नुक्कड़ सभा में बिगुल मज़दूर दस्ता के अपूर्व ने कहा कि मई दिवस वह दिन है जब पूरी दुनिया का मज़दूर वर्ग पूँजी की अन्धाधुन गुलामी, शोषण-उत्पीड़न के ख़िलाफ अपनी एकता की आवाज़ को बुलन्द करता है। यह वह दिन है जब मज़दूर वर्ग ने ' 8 घण्टे काम, 8 घण्टे आराम, 8 घण्टे मनोरंजन' का नारा दिया और अपने तमाम साथियों की कुर्बानी देकर यह अधिकार हासिल किया।

गोरखपुर

मई दिवस के अवसर पर गोरखपुर के बरगदवां औद्योगिक क्षेत्र में बिगुल मज़दूर दस्ता और टेक्सटाइल वर्कर्स यूनियन की ओर से सभा का आयोजन किया गया। सभा के दौरान वक्ताओं ने मई दिवस के इतिहास पर विस्तृत बातचीत की। इस दौरान नुक्कड़ नाटक 'देश को आगे बढ़ाओ' खेला गया और क्रान्तिकारी गीतों की प्रस्तुति की गयी। बिगुल मज़दूर दस्ता के कार्यकर्ताओं ने मज़दूर आन्दोलन में दलालों की भूमिका पर बातचीत करते हुए यूनियन के पुनर्गठन की ज़रूरत पर बल दिया। कार्यक्रम के अंत में फैक्ट्री के इलाकों और मज़दूर बस्तियों से होकर नारे लगाते हुए जुलूस निकाला गया और व्यापक पर्चा वितरण किया गया।

अम्बेडकरनगर

अंतर्राष्ट्रीय मजदूर दिवस के मौके पर आज अम्बेडकरनगर के सबितपुर बाज़ार और भरतपुर गाँव के मजदूर बस्ती में बिगुल मजदूर दस्ता और नौजवान भारत सभा द्वारा नुक्कड़ सभाएँ की गई और पर्चे बांटे गए।

मुम्बई

मई दिवस के अवसर पर मानखुर्द मुंबई के विभिन्न इलाकों में कल सभाएं आयोजित की गयी व सघन पर्चा वितरण किया गया। सुबह लेबर चौक पर सभाओं से शुरूआत की गयी व शाम को मुख्य बाजार व इलाके के अन्य भीड़भाड वाले स्थानों पर सभाएं आयोजित कर पर्चा वितरण करते हुए मई दिवस की विरासत से मजदूरों को परिचित करवाया गया।

देहरादून

'दून प्रोग्रेसिव डिस्कशन फोरम' के द्वारा अंतरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस के अवसर पर देहरादून के 'दून विश्वविद्यालय' के सीनेट हॉल में एक 'पैनल डिस्कशन' छात्रों और मजदूरों के बीच रखा गया, जिसका उद्देश्य रोज़मर्रा के फैक्टरी जीवन के अनुभव को और उसकी समस्याओं को आम छात्रों के साथ साझा करना था। इस डिस्कशन में 'दिशा छात्र संगठन' के अपूर्व और 'बिगुल मज़दूर दस्ता' के साथियों को आमंत्रित किया गया था।

छात्रों के बीच इस कार्यक्रम को रखने के उद्देश्य पर बात करते हुए दून विश्वविद्यालय के प्राध्यापक पी. कुमार मंगलम ने कहा कि भले ही आम छात्रों को यह लगता हो कि मई दिवस केवल शारीरिक श्रम करने वाले मजदूरों का त्योहार है और छात्रों का इससे कोई मतलब नहीं है, लेकिन यह एक बड़ी भूल है। आज शारीरिक श्रम और मानसिक श्रम में जो भेद बना हुआ है, उसके कारण हमें अपने बारे में एक गलतफहमी हो जाती है कि हम मज़दूर नहीं हैं। लेकिन हम भी कहीं-न-कहीं अपना मानसिक श्रम लगते हैं और हमारा भी शोषण होता है। हम भी उसी शोषण की व्यवस्था के तहत ही आते हैं, जिसमें मज़दूर शामिल हैं।

(पेज 12 पर जारी)

आरएसएस और बीएमएस के मई दिवस विरोध के असली कारण

हरियाणा सरकार के श्रम मन्त्री ने पिछली 28 अप्रैल को घोषणा की कि वो इस साल मज़दूर दिवस यानी 1 मई को कोई कार्यक्रम नहीं करेंगे, बल्कि विश्वकर्मा जयन्ती पर करेंगे, क्योंकि विश्वकर्मा ने कहा था कि काम ही पूजा है। मई दिवस द्वारा अपने वाज़िब हक़ के लिए लड़ने के सन्देश को 'अच्छा नहीं' कहने वाला संगठन आखिर विश्वकर्मा जयन्ती से मज़दूरों को क्या सन्देश देना चाहता है? ये मज़दूरों को बताते हैं कि मालिक लोग अपनी मेहनत व प्रतिभा से उद्योग लगाते हैं, उससे मज़दूरों को रोज़गार मिलता है, उनके परिवारों की रोज़ी-रोटी चलती है; इसलिए मज़दूरों को उनका अहसानमन्द होना चाहिए। जिन मशीनों-औजारों पर काम करके उनकी रोज़ी-रोटी चलती है उनकी पूजा करनी चाहिए, उनकी सफ़ाई-देखभाल करनी चाहिए और ज़्यादा से ज़्यादा काम करने की शपथ लेनी चाहिए, जिससे उत्पादकता बढ़े। लेकिन वह मज़दूरों को यह नहीं बताते कि मालिक का मुनाफ़ा मज़दूर के श्रम से उत्पाद की वस्तु के मूल्य में होने वाले इज़ाफ़े से ही आता है -- तो मज़दूर जितना ज़्यादा श्रम करेंगे, मालिक उनकी मेहनत के मूल्य को उतना ही ज़्यादा अपनी जेब में डालकर और भी सम्पत्तिशाली होते जायेंगे और इससे मज़दूरों को कुछ हासिल नहीं होगा। मज़दूरों का नाम लेने वाला लेकिन अन्दर से मालिकों के हितों का पोषण करने वाला कोई संगठन ही मज़दूरों को ऐसा सन्देश देने को अच्छा बता सकता है। ऐसे में हम मज़दूर बिगुल में पहले प्रकाशित हुआ यह लेख एक बार फिर अपने पाठकों की याददिहानी के लिए यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। — सम्पादक

पहली मई 1886 के ऐतिहासिक दिन हे मार्केट, शिकागो, अमेरिका में मज़दूर बडे पैमाने पर उठ खड़े हुए थे पूँजीपति मालिकों से अपने हक़ की लड़ाई लड़ने के लिए। हक़ और इन्साफ़ की माँग करते इन मज़दूरों पर मालिकों की पिट्ठू पुलिस ने निर्दयतापूर्ण हमला कर बहुत सारे मज़दूरों की हत्या कर दी थी। उस दिन बहे मज़दूरों के इस ख़ून से ही रँगकर दुनिया के मज़दूरों के झण्डे का रंग लाल हुआ। इसने मज़दूर वर्ग को सिखाया कि पूँजीवादी व्यवस्था का जनतन्त्र मालिक बुर्जुआ वर्ग का जनतन्त्र है, मेहनतकशों का नहीं -- उनके लिए तो वह अधिनायकवाद है जो मालिकों द्वारा मज़दूर वर्ग की लूट के तन्त्र की हिफ़ाज़त करता है।

दुनिया भर के मज़दूरों ने लाल झण्डे के साथ मई दिवस को मनाना शुरू किया, शिकागो के उन्हीं बलिदानी मज़दूरों को श्रद्धांजलि देने और यह शपथ लेने के लिए कि यह लड़ाई पूँजीवाद को उखाड़ फेंकने व शोषण मुक्त समाज क़ायम करने की ज़िम्मेदारी पूरे होने तक जारी रखी जायेगी। इसे 'अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस' नाम दिया गया, यह बताने के लिए कि दुनिया भर के मज़दूर एक-दूसरे के बँधु-बाँधव हैं और उनका साझा दुश्मन है दुनिया का पूँजीपति वर्ग जो उनकी लड़ाई को कमज़ोर करने के लिए उन्हें राष्ट्र, क्षेत्र, भाषा, मज़हब, आदि के नाम पर बाँट कर आपस में भिड़ाये रखना चाहता है।

दुनिया के मज़दूरों को सरमायेदारों की सत्ता व शोषण को ख़त्म करने के संघर्ष की प्रेरणा देने वाला यह मई दिवस पूँजीपति वर्ग व उसके पैरोकारों को कैसे पसन्द आ सकता है? यह तो उनके दिलों में भय और कँपकँपी पैदा करने का सन्देश देने वाला दिन है। इसलिए स्वाभाविक ही है कि वे मई दिवस को बदनाम करें, इसके सन्देश को भुलाने-भरमाने की कोशिश करें और मज़दूर वर्ग को इसके बारे में बरगलायें।

यही काम आज भारत के पूँजीपति वर्ग की सबसे विश्वस्त पार्टी और उसकी चाबी अपने हाथ में रखने वाला राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) करना चाहता है। इनको अच्छी तरह मालूम है कि सिर्फ़ दमन के बल पर मज़दूर वर्ग के संघर्ष को रोका/दबाया नहीं जा सकता। जिस दिन मज़दूर वर्ग अपनी क्रान्तिकारी पार्टी के नेतृत्व में सचेत और संगठित हो जायेगा, वह सारे दमन-उत्पीड़न के बावजूद इस पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंकेगा। उसको रोकने का एक ही तरीक़ा है उसकी वर्गीय चेतना-समझ को भोथरा और कुन्द करना। इसके लिए ही पूँजीपति वर्ग के भाड़े के टट्टू ये भेड़ की खाल पहने भेड़िये की तरह मज़दूरों की ट्रेड यूनियन बनाते हैं, उन्हें सिर्फ़ कुछ आर्थिक व अन्य छोटी-मोटी सुविधाओं की लड़ाई तक सीमित करते हैं और मज़दूरों को मालिकों का अहसानमन्द बनने की शिक्षा देते हैं।

आरएसएस का ट्रेड यूनियन संगठन भारतीय मज़दूर संघ (बीएमएस) इसीलिए मज़दूरों के मई दिवस मनाने के विरोध में है। इसके सचिव के अख़बारों में प्रकाशित वक्तव्य के अनुसार 1 मई 1886 को शिकागो के हे मार्केट में हुए 'रक्तपात व हिंसा' की वजह से वे मई दिवस को नहीं मानते। 'हम ऐसी दर्दनाक घटनाओं का स्मरण नहीं करते। यह सृजनात्मक विचार नहीं है; यह मज़दूरों में नफ़रत भड़काता है।' मतलब साफ़ है कि ये छद्म मज़दूर हितैषी इस बात को मज़दूरों की याददाश्त से ही मिटा देना चाहते हैं कि किस प्रकार अपने वाज़िब हक़ की आवाज़ उठाते मज़दूरों की हत्याएँ की गयी थीं, कैसे उनके नेताओं को झूठे-फ़र्ज़ी मुक़दमों में फँसाकर फाँसी-उम्रक़ैद की सज़ा दी गयी थी। उनकी बात बिल्कुल सही भी है -- पूँजीपति वर्ग का चरित्र उस जोंक का है जो मज़दूर वर्ग का ख़ून चूसकर मोटी होती जा रही है। उस जोंक को अगर ख़ून चूसने से रोक दिया जाये तो निश्चित ही उसके लिए वह बहुत दर्दनाक होगा। इसी तरह मज़दूर वर्ग का अपने हक़ के लिए उठ खड़े होने की घटना भी पूँजीपति वर्ग के लिए एक 'दर्दनाक घटना' थी; उसको याद करने से उनको अपने लूटतन्त्र के ख़त्म होने का दुःस्वप्न दिखाई देता है और इस डर वे से थरथराने लगते हैं -- निश्चित ही ऐसी किसी दर्दनाक घटना को वे याद नहीं करना चाहते! लेकिन क्या मज़दूर वर्ग की चाहत भी वही है जो मालिकों की? निश्चित ही नहीं -- मज़दूर वर्ग की चाहत है शोषण की व्यवस्था की समाप्ति। इसलिए कोई भी संगठन, जो मज़दूर वर्ग का हितैषी है, वह कैसे मई दिवस के खिलाफ़ हो सकता है? स्वभाविक ही है कि इस अत्याचार का प्रतिकार करने की चेतना अगर मज़दूर वर्ग में पैदा होगी तो वह मालिकों को नफ़रत ही दिखाई देगी, लेकिन मज़दूर वर्ग का असली संगठन कभी भी इस चेतना को दबाने के बजाय इसे और तीव्र ही करना चाहेगा।

बीएमएस के सचिव का आगे कहना है -- 'मई दिवस भारतीय मानस का अंग नहीं है इसलिए बीएमएस इसे नहीं मानता। यह मज़दूरों को अच्छा सन्देश नहीं देता। इसलिए हम इसके बजाय विश्वकर्मा जयन्ती के दिन भारतीय श्रमिक दिवस मनाते हैं।' मई दिवस द्वारा अपने वाज़िब हक़ के लिए लड़ने के सन्देश को 'अच्छा नहीं' कहने वाला संगठन आखिर विश्वकर्मा जयन्ती से मज़दूरों को क्या सन्देश देना चाहता है? ये मज़दूरों को बताते हैं कि मालिक लोग अपनी मेहनत व प्रतिभा से उद्योग लगाते हैं, उससे मज़दूरों को रोज़गार मिलता है, उनके परिवारों की रोज़ी-रोटी चलती है; इसलिए मज़दूरों को उनका अहसानमन्द होना चाहिए। जिन मशीनों-औजारों पर काम करके उनकी रोज़ी-रोटी चलती है उनकी पूजा करनी चाहिए, उनकी सफ़ाई-देखभाल करनी चाहिए और ज़्यादा से ज़्यादा काम करने की शपथ लेनी चाहिए, जिससे उत्पादकता बढ़े। लेकिन वह मज़दूरों को यह नहीं बताते कि मालिक का मुनाफ़ा मज़दूर के श्रम से उत्पाद की वस्तु के मूल्य में होने वाले इज़ाफ़े से ही आता है -- तो मज़दूर जितना ज़्यादा श्रम करेंगे, मालिक उनकी मेहनत के मूल्य को उतना ही ज़्यादा अपनी जेब में डालकर और भी सम्पत्तिशाली होते जायेंगे और इससे मज़दूरों को कुछ हासिल नहीं होगा। मज़दूरों का नाम लेने वाला लेकिन अन्दर से मालिकों के हितों का पोषण करने वाला कोई संगठन ही मज़दूरों को ऐसा सन्देश देने को अच्छा बता सकता है।

इनका और भी कहना है कि 'अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस' 'भारतीय संस्कृति' से विलग है और 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' के विपरीत है। इनके अनुसार मज़दूर दिवस वामपन्थियों की 'सामाजिक विद्वेष' फैलाने की प्रवृत्ति का अंग है। इनको अच्छी तरह मालूम है कि मज़दूर वर्ग की देश और दुनिया के पैमाने पर एकता उसके संघर्ष का बड़ा हथियार है। इसलिए ये हमेशा मज़दूरों को धर्म, मज़हब, भाषा, इलाक़ा, जाति, आदि के नाम पर बाँट कर आपस में लड़ाना चाहते हैं ताकि एक क्षेत्र या देश के मज़दूरों के संघर्ष में बाक़ी मज़दूर उनकी मदद करना तो दूर बल्कि इनके इशारे पर उनको अपना दुश्मन मानकर उन पर दमन करने में मालिकों की हिमायत और मदद करें। इसीलिए ये मज़दूर वर्ग के संगठन में राष्ट्र और संस्कृति को सवाल खड़ा करते हैं लेकिन मज़दूरों को पूछना होगा कि कौन सी संस्कृति? जो मालिकों के शोषण को जायज़ ठहराती है या मज़दूर वर्ग को अपने शोषण के ख़िलाफ़ उठ खड़े होने की प्रेरणा देती है?

मेहनतकश तबक़े को आज यह पक्का समझ लेना चाहिए कि इस प्रकार के मज़दूर वर्ग हित विरोधी विचार फैलाने वाले संगठन असल में मज़दूर वर्ग को धोखा देकर मालिकों के हित साधने वाले संगठन हैं। मज़दूरों को भ्रमित व बरगलाने वाली इन ट्रेड युनियनों को पहचानकर उनका भण्डाफोड़ करने और उन्हें मज़दूरों के बीच से भगा देने की सख्त ज़रूरत है।

— मुकेश त्यागी

अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस पर विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन

(पेज 11 से आगे)

विमर्श की शुरुआत में बिगुल मज़दूर दस्ता के साथी रामाधार और मोती ने फैक्टरी के हालात, मज़दूरों के रोजमर्रा के काम के दौरान आने वाली समस्याओं तथा मज़दूर आंदोलन में तमाम दलाल और मालिकपरस्त ट्रेड यूनियनों की भूमिका पर विस्तार से बात रखी।

दिशा छात्र संगठन के अपूर्व ने कहा कि आम मजदूरों के हालात सुधारने के संघर्ष की चुनौतियाँ आज बहुत ज़्यादा हैं। देश की 93 प्रतिशत मज़दूर आबादी आज असंगठित है जिनके लिए नगण्य श्रम कानून हैं और वे भी लागू नहीं होते। मज़दूर बस्तियों के हालात भी बहुत ही बुरे हैं जहां बुनियादी नागरिक सुविधाएं तक नहीं हैं। ऐसे में हमें उनके काम करने की परिस्थितियों से लेकर उनकी रिहाइश तक में व्यापक सुधार की मांगों को लेकर नए सिरे से आंदोलन खड़ा

करने के लिए चौतरफ़ा पहल लेनी होगी। नई परिस्थितियों का तकाजा है कि मज़दूर आंदोलन में संघर्ष के नए रूप विकसित किए जाएँ।

इस विमर्श में छात्रों की तरफ से बहुत से सवाल भी आए। जैसे -- मजदूरों के बीच शिक्षा का प्रसार करने से क्या उनकी दिक्कतें दूर हो जाएंगी, आज मजदूरों का कोई भी आंदोलन सफल क्यों नहीं हो पा रहा है, मजदूरों को संगठित करने की क्या चुनौतियाँ हैं, ठेके के मजदूरों और परमानेंट मजदूरों के बीच क्या फर्क है, आज मज़दूर आंदोलन में केंद्रीय ट्रेड यूनिययों की क्या भूमिका है, छात्र मजदूरों के लिए क्या कर सकते हैं, आदि-आदि...

इन सभी सवालों का विस्तार से जवाब देते हुए अपूर्व ने कहा कि कोई भी क्रांतिकारी परिवर्तन छात्रों की पहलकदमी के बिना संभव नहीं हो सकता। छात्रों को अपनी वर्गीय पक्षधरता के हिसाब से यह तय करना ही होगा कि वे किसके पक्ष में खड़े हैं। छात्रों को मज़दूर मुक्ति और सामाजिक मुक्ति के विज्ञान को समझना होगा और मज़दूर वर्ग को जागृत, शिक्षित और संगठित करने में अपनी भूमिका निभानी होगी।

जो छात्र मेहनतकश तबके के लिए कुछ करना चाहते हैं, उन्हें सबसे पहले समय निकालकर मज़दूर बस्तियों में जाना चाहिए। मजदूरों की रोज़मर्रा की समस्याओं को समझने के साथ ही उन्हें हल करने के लिए उनको संगठित करना होगा तथा इलाकाई और पेशागत आधारों के उनके संगठन बनाने होंगे। छात्रों के लिए यह ज़रूरी है कि वे दुनिया के तमाम मज़दूर संघर्षों और क्रांतियों के इतिहास से परिचित हों और मज़दूर वर्ग को उनकी रोजमर्रा की लड़ाइयों के अतिरिक्त पूंजीवाद विरोधी ऐतिहासिक मिशन से भी परिचित कराएं।

सवाल पूछने वाले छात्रों में सिद्धार्थ, प्रियंका, शायन, कोकिल, अतुल आदि शामिल थे। कार्यक्रम में मई दिवस के इतिहास पर अनुराधा ने अपनी बात रखी। अंत में 'द मॉडर्न टाइम्स' फिल्म दिखाने के साथ ही कार्यक्रम का समापन किया गया।

— बिगुल संवाददाता

अक्टूबर क्रान्ति शतवार्षिकी समिति की ओर से कात्यायनी का व्याख्यान

स्त्रियों को पहली बार वास्तविक आज़ादी की राह पर आगे बढ़ाने का काम अक्टूबर क्रान्ति के बाद स्थापित सोवियत समाजवाद ने किया

अक्टूबर क्रान्ति शतवार्षिकी समिति द्वारा 6 मई को पटना के आईएमए हॉल में 'सोवियत समाजवाद और स्त्रियाँ : एक समकालीन पुनरावलोकन' विषय पर व्याख्यान का आयोजन कराया गया। इस कार्यक्रम में प्रसिद्ध लेखिका, कवियित्री एवं राजनीतिक कार्यकर्ता कात्यायनी को मुख्य वक्ता के तौर पर आमन्त्रित किया गया था।

कात्यायनी ने अपनी बात की शुरुआत करते हुए कहा कि आज जब तमाम बुर्जुआ शासकों द्वारा हमारी स्मृतियों को हमसे छीना जा रहा है, हमारे वर्तमान को धूमिल कर हमारे भविष्य को हमसे छीना जा रहा है, तो ऐसे समय में अक्टूबर क्रान्ति को याद करने का यही अर्थ हो सकता है कि हम इस क्रान्ति के प्रासंगिक तत्वों को आत्मसात करें व इससे प्रेरणा लेकर आज की चुनौतियों से संघर्ष करें और भविष्य की सर्वहारा क्रान्तियों के मार्ग की तरफ़ आगे बढ़ें। पूँजीवाद के बर्बरतम अनाचार का जो भूमण्डलीय दुष्चक्र है, वह इतिहास का अन्त नहीं है, अपितु इतिहास को तो इससे अभी आगे जाना है, रूसी क्रान्ति की शिक्षाएँ आने वाले भविष्य की सर्वहारा क्रान्तियों का मार्ग प्रशस्त करेंगी।

आगे अपनी बात में उन्होंने विस्तार से कहा कि अक्टूबर क्रान्ति पूरी दुनिया में एक नये युग के आगमन की घोषणा थी। पूरी दुनिया के ज्ञात इतिहास में युग प्रवर्तक घटनाओं में से एक थी। इस क्रान्ति में मेहनतकश आबादी ने लेनिन और बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व में पूँजीपतियों और सम्पत्तिशाली लोगों की सत्ता को जड़ से उखाड़ कर सर्वहारा सत्ता की स्थापना की। इस क्रान्ति के बाद दुनिया वैसी नहीं रह गयी, जैसे वो पहले थी। यह कहा जा सकता है कि अक्टूबर क्रान्ति के तोपों के गोलों के धमाके पूरी दुनिया में गूँज उठे थे। पूरी दुनिया के जनमानस को इस क्रान्ति ने कितना गहराई से प्रभावित किया था, इसका प्रमाण उस समय की पत्र-पत्रिकाओं को देखकर लग जाता है। भारत में भी उस दौर में निकलने वाली पत्र-पत्रिकाओं में रूसी क्रान्ति और सोवियत सत्ता द्वारा किये जा रहे तमाम प्रयोगों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते लेख मिलते हैं। केवल मार्क्सवादियों द्वारा ही नही, अपितु गाँधीवादी चिन्तकों, यहाँ तक कि स्वतन्त्र बुद्धिजीवियों द्वारा ये लेख लिखे जा रहे थे।

अक्टूबर क्रान्ति को सम्पन्न और उसके बाद सोवियत सत्ता द्वारा किये जा रहे प्रयोगों को सफल करने के प्रयासों में वहाँ की स्त्रियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अगर हम यह कहें कि उन स्त्रियों के बिना हम समाजवादी क्रान्ति और सोवियत समाजवाद की कल्पना नहीं कर सकते हैं, तो यह अतिश्योक्ति नहीं होगी।

आज तमाम बुर्जुआ नारीवादी, उत्तर आधुनिकतावादी, अस्मितावादी चिन्तक, वर्ग-अपचयनवादी सूत्रीकरण पेश करते हुए स्त्री-प्रश्न पर मार्क्सवादी चिन्तन को गुज़रे ज़माने की चीज़ बताते हैं। अकादमिक हलक़ों में भी इस तथ्य का उल्लेख हमें नहीं मिलता है कि रूसी क्रान्ति के बाद इतिहास में सोवियत सत्ता ने पहली बार, स्त्रियों को बराबरी का अधिकार दिया, इसे न केवल क़ानूनी धरातल पर बल्कि आर्थिक-राजनीतिक व सामाजिक धरातल पर इसे सम्भव बनाया। ज्ञात इतिहास में पहली बार स्त्रियों को चूल्हे-चौखट की गुलामी से मुक्त किया गया। विवाह, तलाक व सहजीवन जैसे मामलों में राज्य, समाज और धर्म के हस्तक्षेप को ख़त्म किया गया। भारी पैमाने पर स्त्रियों की उत्पादन और समस्त आर्थिक-राजनीतिक कार्यवाहियों में बराबरी की भागीदारी को सम्भव बनाया। यह कहा जा सकता है कि प्रबोधन कालीन मुक्ति और समानता के आदर्शों को पहली बार इतिहास में वास्तविकता के धरातल पर उतारने का काम अक्टूबर क्रान्ति ने किया। हालाँकि इस तरह के पहले महान सामाजिक परिवर्तन के प्रयोगों की तरह इसमें भी कुछ कमियाँ, विचलन और ग़लतियाँ थीं। इसके वस्तुपरक मूल्यांकन के लिए हमें कुछ बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। यह क्रान्ति असमान्य, विशिष्ट राजनीतिक-ऐतिहासिक परिस्थितियों में सम्पन्न हुई थी। वैज्ञानिक समाजवाद की शिक्षाओं को अमल में लाने का यह पहला प्रयोग था। वैसे भी समाजवादी समाज साम्यवाद की ओर संक्रमण का एक लम्बा दौर होता है। इसमें अभी भी बुर्जुआ विचार, मूल्य-मान्यताएँ समाज में बनी रहती हैं। इस दौरान तमाम तरह के उतार-चढ़ाव व पराजयों की सम्भावनाएँ बनी रहती हैं।

हज़ारों सालों से जो पुरुष सत्तात्मक प्रवृतियाँ हैं, जो विवाह, परिवार जैसी वर्ग संस्थाओं के रूप में मौजूद हैं, उनको एक झटके में ही तो नहीं ख़त्म किया जा सकता है, समाजवादी संक्रमण की लम्बी प्रक्रिया के दौरान ही इसका ख़ात्मा हो सकता है। इस परिप्रेक्ष्य पर सोचे बिना हम रूसी क्रान्ति का सन्तुलित मूल्यांकन नहीं कर सकते हैं।

आगे कात्यायनी ने कहा कि इतिहास में पहले भी विवाह, परिवार आदि के उन्मूलन की बातें की जाती रही थीं, पर पहली बार सुसंगत ढंग से प्रबोधनकालीन दार्शनिकों जैसे रूसो, दिदेरो और वोल्तेयर ने परिवार, विवाह और सामाजिक सम्बन्धों की सन्तुलित आलोचना प्रस्तुत की। फ्रांसीसी क्रान्ति में तो स्त्रियों ने भी भागीदारी की। इस क्रान्ति के बाद स्त्रियों को सम्पत्ति का अधिकार, तलाक देने का अधिकार आदि प्राप्त हुए थे, हालाँकि नेपोलियन सिविल कॉड के आने के बाद ये आधिकार छीन लिये गये। हालाँकि इसके बाद भी यूरोप में कई बुर्जुआ नारीवादी आन्दोलन हुए जिसमें मताधिकार, शिक्षा और रोज़गार का अधिकार आदि प्रमुख माँगें रहीं। इन बुर्जुआ नारीवादी आन्दोलनों की अपनी सीमाएँ थीं। ये आन्दोलन सिर्फ़ पढ़ी-लिखी अभिजात व कुलीन वर्ग से आने वाली महिलाओं तक ही सीमित थे। ये आन्दोलन स्त्रियों की पराधीनता का कारण, वर्ग समाज पर आधारित सामाजिक व्यवस्था में न देखकर स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में देखती थी। जिसके कारण ये आन्दोलन आगे चलकर अराजकतावादी उच्छृंखल आन्दोलन बन कर रह गये।

19वीं सदी के मध्य में जब मार्क्स व एंगेल्स ने इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा पेश की। जिसमें उन्होंने सामाजिक उत्पादन सम्बन्धों की तर्कसंगत व्याख्या दी और यह बताया कि परिवार कोई जैविक सम्बन्धों का अपरिवर्तनशील शाश्वत समुच्चय नहीं है, बल्कि यह निरन्तर ऐतिहासिक रूप से परिवर्तनशील सामाजिक सम्बन्ध है और स्त्री की गुलामी और पराधीनता का केन्द्र है। पहली बार इस बात को मार्क्स ने अपनी पुस्तक "जर्मन विचारधारा" में रखा। फिर एंगेल्स ने अपनी पुस्तक परिवार, निजी सम्पत्ति व राज्य सत्ता की उत्पत्ति में उस समय के नृतत्वशास्त्रीय अध्ययनों के आधार पर यह बताया कि परिवार व राज्य सत्ता की उत्पत्ति वर्ग- समाज के उदय होने के साथ शुरू हुई और जब मानव समाज उत्पादन प्रक्रिया के दौरान अधिशेष पैदा करने लगा, तो उसके विनियोजन की प्रक्रिया में एक परजीवी व फ़ुर्सतिया शासक वर्ग पैदा हुआ, इसके बाद मानव समाज समानता पर आधारित वर्गविहीन समाज से असमानता पर आधारित वर्ग समाज में रूपान्तरित हो गया, इस दौरान सम्पत्ति के विरासती अधिकार के लिए स्त्रियों की सामाजिक पराधीनता ज़रूरी थी। इसे एंगेल्स स्त्रियों की गुलामी और पराधीनता का शुरुआती बिन्दु मानते हैं। वे आगे कहते हैं कि यह परिवार ही है जो सत्ता की आज्ञाकारिता का प्रशिक्षण केन्द्र होता है। यह परम्पराओं और रूढ़ियों की घुट्टी पिलाकर स्त्रियों को वैचारिक तौर पर अक्षम बना देता है।

पूँजीवाद के आगमन के बाद स्त्रियों को एक हद तक शिक्षा और रोज़गार के अवसर मिलते हैं, परन्तु पूँजीवाद को हमेशा बेरोज़गारों की फ़ौज की आवश्यकता होती है। इसलिए सचेतन तौर पर पूँजीवाद परिवार संस्था और स्त्रियों की दोहरी गुलामी को बनाये रखता है।

हालाँकि, इस दौर में बुर्जुआ नारीवाद की धाराएँ थीं, इनमें से एक धारा यह कहा करती थी कि स्त्री-पुरुष के कामों का पुन बँटवारा कर देना चाहिए, परन्तु मार्क्सवाद यह बताता है कि सारे घरेलू कामों का समाजीकरण कर देना चाहिए। एक धारा और थी जो यह कहती थी कि विवाह व परिवार जैसी संस्थाओं का ही उन्मूलन कर देना चाहिए, वहीं दूसरी ओर मार्क्सवाद यह बताता है कि मौजूदा वर्ग समाज में यह सम्भव नहीं है। वर्ग समाज के ख़ात्मे के बाद ही इसका उन्मूलन हो सकता है। समाजवाद के आने के बाद ही वर्ग-समाज के ख़ात्मे की परिस्थितियाँ तैयार होंगी।

19वीं सदी के उत्तरार्ध में जब रूस में क्रान्तिकारी आन्दोलनों का उभार होता है, तो यूरोप के स्त्री आन्दोलन पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। रूस उस वक़्त एक किसानी समाज था, स्त्रियों के प्रति काफ़ी रूढ़ीग्रस्त था। वहाँ के गाँवों में "पात्राचिका" नामक एक कुप्रथा प्रचलित थी, जिसमें ज़मींदार व धनी किसान दूसरी स्त्रियों को मज़दूर और पत्नी के रूप में एक अवधि के लिए रख लेते थे। उनके गर्भवती हो जाने के बाद उन्हें फिर निकाल दिया जाता था। उस समय के बौद्धिकों ने इन रूढ़ियों और कुप्रथाओं के ख़िलाफ़ आवाज़ उठायी। वहाँ स्त्रियों के कई ऐसे गुट भी बने जो स्त्री मुक्ति के लिए आन्दोलनरत थे, हालाँकि उन पर अराजकतावादी विचारक बकुनिन का प्रभाव था। कई स्त्रियाँ उस दौर में प्रचलित क्रान्तिकारी संगठन नारोद्नाया वोल्या से भी जुड़ीं।

20वीं सदी के पहले दशक में बोल्शेविक पार्टी ने बड़े स्तर पर महिलाओं को संगठित करने का प्रयास शुरू किया। कई रूसी स्त्रियाँ बोल्शेविक पार्टी से जुड़ी और नेतृत्वकारी भूमिकाएँ भी निभायीं। इनमें क्रुप्स्काया, कोल्लोन्ताई व समाइलोवा प्रमुख थीं। जब लेनिन मेंशेविकों के साथ कई सैद्धान्तिक और राजनीतिक मसलों पर बहस चला रहे थे, तब इस बहस का असर रूस के स्त्री-मुक्ति आन्दोलन पर भी पड़ता है। लेनिन कहते हैं कि महज़ कुछ क़ानूनी अधिकारों की लड़ाई व संसदीय संघर्ष से स्त्री मुक्ति के प्रश्न का समाधान नहीं हो सकता है। स्त्रियों की मुक्ति समाजवाद के अन्तर्गत ही सम्भव है। हालाँकि कई बोल्शेविक क्रान्तिकारी अब भी बुर्जुआ नारीवादी आन्दोलन के प्रभाव में थे, परन्तु लेनिन ने पार्टी के भीतर इन विचलनों के ख़िलाफ़ सतत संघर्ष चलाकर इससे दूर किया। इन्हीं प्रयासों का नतीजा होता है कि 1907 आते-आते स्त्री मज़दूरों का पहला संगठन अस्तित्व में आता है। 1908 मे अलेक्सान्द्रा कोल्लोन्ताई के नेतृत्व में अखिल रूसी महिला सम्मलेन होता है। हालाँकि इसमें कोल्लोन्ताई द्वारा पेश किये गये प्रस्तावों को ख़ारिज़ कर दिया जाता है, इससे वे इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि स्त्रियों के अन्तरवर्गीय संगठन सम्भव नहीं हैं, क्योंकि अपने वर्ग-बोध के कारण ये अभिजात वर्ग की औरतें कभी भी मज़दूर औरतों के साथ उनकी माँगों को लेकर खड़ी नहीं हो सकती हैं।

आगे वर्गीय आधार पर स्त्री संगठनों की शुरुआत की जाती है। 1911 में 8 मार्च के दिन को अन्तरराष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में मनाने का प्रस्ताव पारित किया जाता है। बोल्शेविक पार्टी के कामों का प्रचार-प्रसार इस दौरान गाँव की महिलाओं तक हो जाता है।

1914 में जब द्वितीय विश्वयुद्ध की शुरुआत होती है, तब काउत्स्की एक अन्धराष्ट्रवादी अवस्थिति अपनाते हैं और मज़दूरों को इस सम्राज्यवादी युद्ध में अपने देश के शासक वर्ग का साथ देने की अपील करते हैं, जिसका लेनिन खुलकर विरोध करते हैं। वे कहते हैं कि यह युद्ध बाज़ार के पुन: बँटवारे के लिए साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा लड़ा जा रहा युद्ध है, अपने देश शासक का साथ देने की बजाय उसे शासक वर्ग के ख़िलाफ़ अपना संघर्ष तेज़ कर देना चाहिए।

इस दौरान बोल्शेविक पार्टी मज़दूरों के बीच जाकर बड़े पैमाने पर युद्ध विरोधी प्रचार करती है। इसमें औरतें बढ़-चढ़कर हिस्सा लेती हैं। उन स्त्रियाँ के बीच भी इस तरह के प्रचार को किया जाता है, जिनके घरों से फ़ौजी इस युद्ध में लड़ने जा रहे होते हैं। जो काफ़ी हद तक सफल रहता है, व सेना का एक बड़ा हिस्सा बोल्शेविक क्रान्ति का समर्थक बनता है।

1917 में घटित रूसी क्रान्ति में महिलाएँ जिस पैमाने पर भाग लेती हैं, वह अविश्वसनीय प्रतीत होता है। क्रान्ति के दौरान महिलाएँ अग्रिम क़तारों में शामिल होकर इसे अंजाम देती हैं। क्रान्ति के सम्पन्न होने के बाद रूस में सामाजिक जीवन में स्त्रियों की अवस्थिति पर चर्चाएँ होनी आरम्भ हो जाती हैं। क्रान्ति के ठीक एक महीने बाद विवाह, सहजीवन व अलगाव पर से राज्य व धर्म का हस्तक्षेप ख़त्म कर दिया जाता है। वेश्यावृति को अपराध की श्रेणी से हटा दिया जाता है। क्यूँकि बोल्शेविक यह मानते थे कि ऐसे अपराधों को महज़ क़ानून बनाकर ख़त्म नहीं किया जा सकता है। इसके लिए वह भौतिक-आर्थिक आधार तैयार करना होगा, उसके बाद ही इन अपराधों को ख़त्म किया जा सकता है। पीली पर्ची की व्यवस्था ख़त्म कर दी गयी। वेश्याओं को समाज की मुख्यधारा में लाने के प्रयास किये गये। उनकी इन नीतियों का ही परिणाम था

(पेज 14 पर जारी)

मज़दूर संघर्षों के साथी नितिन नहीं रहे...
साथी नितिन को अन्तिम लाल सलाम

पिछली 11 मई को दिल का दौरा पड़ने से नौजवान भारत सभा की राष्ट्रीय केन्द्रीय परिषद के सदस्य और दिल्ली में आंगनबाड़ी स्त्री मज़दूरों के बीच संगठनकर्ता के तौर पर काम कर रहे साथी नितिन का आकस्मिक निधन हो गया। वह मात्र 30 वर्ष के थे। पिछले कुछ दिनों से उनकी तबीयत ख़राब चल रही थी और परीक्षणों में कोलेस्ट्रॉल के बढ़ने की रपट सामने आयी थी। आज भोर में उन्होंने सीने में तेज़ दर्द की शिकायत की जिसके बाद उनके परिवार वालों ने उन्हें एण्टैसिड दी, क्योंकि वे दर्द का असली कारण नहीं समझ पाये। वास्तव में, दर्द दिल का दौरा पड़ने से हो रहा था। उन्हें समय पर अस्पताल नहीं ले जाया जा सका जिसके कारण अन्तत: भोर में 5:30 पर उनके दिल की धड़कन बन्द हो गयी और पिछले 10 वर्षों से युवाओं और मज़दूरों के हक़ों के लिए निरन्तर संघर्ष करने वाला और शहीदेआज़म भगतसिंह के आदर्शों को यथार्थ में बदलने के लिए जीने वाला यह शानदार युवा साथी हमारा साथ छोड़ गया। नितिन की मौत युवा आन्दोलन और मज़दूर आन्दोलन की क्षति है और उनके जाने से ख़ाली हुई जगह को लम्बे समय तक भरा न जा सकेगा।

नौजवान भारत सभा व तमाम यूनियनों के सदस्यों के कहने पर नितिन के पार्थिव शरीर का पोस्टमॉर्टम किया गया, क्योंकि मृत्यु के कारण का पूर्ण निर्धारण नहीं हो पा रहा था। पोस्टमॉर्टम रपट में सामने आया कि मृत्यु का कारण दिल का दौरा पड़ना था, जिसके मूल में एक धमनी का पूर्ण रूप से अवरुद्ध होना था। साथी नितिन को सब्जी मण्डी, दिल्ली के पुलिस शवघर में उनके दर्जनों क्रान्तिकारी साथियों ने अश्रुपूरित आँखों, क्रान्तिकारी लाल सलाम और क्रान्तिकारी नारों के साथ आखिरी सलामी और विदाई दी। उनके शव को अन्तिम संस्कार के लिए उनके गाँव ले जाया गया।

नितिन अपनी ज़िन्दादिली और युवासुलभता के लिए जाने जाते थे। उसे गाना और गिटार बजाना बेहद पसन्द था। नितिन सभी के प्रिय इसलिए भी थे, क्योंकि उनके अन्दर स्वार्थ या अहं जैसी कोई भावना नहीं थी। अपने से पहले दूसरों के बारे में सोचना, साथियों के लिए किसी से भी लड़ जाना या जोखिम ले लेना उनकी आदतों में शुमार था।

नितिन के क्रान्तिकारी जीवन की शुरुआत 2007-08 के दिल्ली विश्वविद्यालय के शैक्षणिक सत्र में हुई थी। सबसे पहले उन्होंने एक छात्र संगठनकर्ता के रूप में दिशा छात्र संगठन में काम किया। इसी बीच उन्होंने मज़दूर मोर्चे की कार्रवाइयों में भी हिस्सेदारी शुरू कर दी। 2008 में ही मेट्रो मज़दूरों के एक आन्दोलन में उन्हें करीब दो दिन जेल में भी बिताने पड़े। इस जेल यात्रा ने उनके क्रान्तिकारी जज़्बे को और मज़बूत कर दिया। इसके बाद, कुछ समय के लिए वह देहरादून में रहे जहाँ से उन्होंने अपना एम-एससी पूरा किया। इसके बाद वह फिर से दिल्ली वापस आ गये। तब से वह लगातार युवा मोर्चे और मज़दूर मोर्चे पर काम कर रहे थे। 25 मार्च 2015 को दिल्ली मज़दूर यूनियन की ओर से दूसरी दिल्ली मज़दूर पंचायत को संगठित करने और उसका आयोजन करने में भी नितिन ने अहम भूमिका निभायी। दिल्ली के विभिन्न क्षेत्रों के हज़ारों मज़दूरों के इस जुटान पर केजरीवाल सरकार के निर्देश पर दिल्ली पुलिस ने भारी लाठीचार्ज किया और कार्यकर्ताओं को गिरफ़्तार किया। चोट खाने वाले लोगों में और गिरफ़्तार होने वाले लोगों में नितिन भी शामिल थे।

दिल्ली स्टेट आंगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन को संगठित करने में मुख्य और केन्द्रीय भूमिका नितिन की ही थी। 2015 की जुलाई में आंगनवाड़ी की स्त्री मज़दूरों के हक़ों को लेकर नितिन ने एक लम्बा आन्दोलन खड़ा किया और उसके नेतृत्व में एक अहम भूमिका निभायी। 7 दिन चली भूख हड़ताल के बाद आन्दोलन को बड़ी सफलता मिली जिसके बाद केजरीवाल सरकार को झुकना पड़ा और ख़ुद मुख्यमन्त्री को मज़दूरों के प्रतिनिधिमण्डल से मिलकर सभी माँगों को मानना पड़ा। इस भूख हड़ताल में साथी नितिन भी सातों दिनों तक बैठे रहे। नितिन को आज भी आंगनबाड़ी की स्त्री मज़दूर अपना लोकप्रिय नेतृत्व मानती हैं। अभी हाल ही में मार्च और अप्रैल में भी आंगनबाड़ी महिला मज़दूरों के दो बड़े आन्दोलन हुए जिन्हें संगठित करने में नितिन की केन्द्रीय भूमिका थी। नितिन के इस तरह अचानक जाने से इस आन्दोलन को अपूरणीय क्षति हुई है।

इसके अलावा, नितिन पिछले कई वर्षों से दिल्ली एनसीआर क्षेत्र में नौजवान भारत सभा के नेतृत्वकारी कोर के सदस्य थे और 2014 में नौजवान भारत सभा के प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन में उन्हें केन्द्रीय परिषद में चुना गया था। दिल्ली के खजूरी ख़ास और करावल नगर के इलाक़े में नितिन युवाओं को संगठित करने में अहम भूमिका निभाते रहे थे, चाहे वह संघी साम्प्रदायिकता के विरुद्ध आन्दोलन खड़ा करने का मसला रहा हो, स्कूल के अधिकार को लेकर खड़ा किया गया आन्दोलन हो या फिर बच्चों और युवाओं के लिए शिक्षा सहायता मण्डल चलाना रहा हो। नितिन को उसके युवा साथियों का भरपूर प्यार मिलता था और वह उनका चहेता था।

दिल्ली में 13 मई को हुई नितिन की स्मृति सभा में साथी अभिनव और तपिश ने 'शहीदों के लिए' गीत की प्रस्तुति के साथ साथी नितिन को श्रद्धांजलि दी। साथी वृषाली ने माल्यार्पण कर साथी नितिन को श्रद्धांजलि दी। स्मृति सभा में नितिन के साथ लम्बे समय से काम करते रहे साथी सनी ने उनके राजनीतिक जीवन का परिचय देते हुए उनकी ज़िन्दादिली और हिम्मत के बारे में बात की।

साथी नितिन नौजवान भारत सभा की केन्द्रीय राष्ट्रीय परिषद के सदस्य थे। नौजवान भारत सभा के राष्ट्रीय अध्यक्ष अरविंद ने उन्हें याद करते हुए कहा कि नितिन के अन्दर ज़बरदस्त श्रम संस्कृति थी और पूरी सृजनशीलता के साथ वे भगतसिंह के क्रान्तिकारी विचारों को जनता में लेकर जाते थे। चण्डीगढ़, इलाहाबाद, गोरखपुर, लखनऊ, पटना, हरियाणा, ग़ाज़ियाबाद, मुम्बई आदि शहरों से आये उनके साथियों, उनके निजी दोस्तों और परिवार के लोगों ने सभा में शिरकत की और उन्हें याद किया।

तीस्ता सेतलवाड़, हिमांशु कुमार, मुकेश त्यागी, एम.के. आज़ाद, हर्ष ठाकोर, उत्तम जागीरदार, एम.जे. पाण्डेय, फ़िरोज़ मिठ्ठीबोरवाला, नारायण ख़राडे, अमरीका से प्रोफ़ेसर इमैनुएल नेस आदि बुद्धिजीवियों और सामाजिक कार्यकर्ताओं ने साथी नितिन को क्रान्तिकारी लाल सलाम पेश करते हुए श्रद्धांजलि सन्देश भेजे।

-- बिगुल संवाददाता

स्त्रियों को पहली बार वास्तविक आज़ादी की राह पर आगे बढ़ाने का काम अक्टूबर क्रान्ति के बाद स्थापित सोवियत समाजवाद ने किया

(पेज 13 से आगे)

कि 1930 तक रूस से वेश्यावृति का ख़ात्मा हो गया।

मज़दूर स्त्रियों के जीवन में भी काफ़ी बदलाव आये, उस वक़्त फ़ैक्टरियों में काम करने वाली ऐसी औरतें जिनके शिशु हुआ करते थे, उन्हें अपने शिशुओं को स्तनपान कराने के लिए हर 3 घण्टे के बाद आधे घण्टे के लिए सवैतनिक छुट्टी दी जाती थी। मासिक धर्म के समय उन्हें भारी काम करने से छुट्टी दी जाती थी। स्त्रियों का मातृत्व सुरक्षा बीमा करवाया जाता था, जिसमें गर्भावस्था के समय से शिशु के जन्म तक हर क़िस्म की निशुल्क स्वास्थ्य सुविधा उन्हें मुहैय्या करायी जाती थी। छोटे-छोटे बच्चों वाली स्त्रियों को रात की पाली में काम करने से मनाही थी। तमाम कठिनाइयों जैसे गृहयुद्ध व साम्राज्यवादी देशों द्वारा की जा रही घेरेबन्दी आदि के बावजूद स्त्री-मुक्ति की दिशा में ये सारे सुधार कार्य किये जाते रहे। उन्नत पूँजीवादी देशों में भी बहुत बाद में और काफी संघर्ष के बाद स्त्रियों को ये अधिकार मिल पाये।

स्तालिन के नेतृत्व में सिर्फ़ कुछ वर्षों के भीतर सोवियत रूस ने विकसित बुर्जुआ राष्ट्रों को पीछे छोड़ दिया था। 1930 के दशक तक रूस में स्त्रियों के सामाजिक हालात बाक़ी अन्य बुर्जुआ राष्ट्रों से कही बेहतर हो चुके थे।

स्त्रियों को चूल्हे-चौखट की गुलामी से आज़ादी दिलाने के लिए घरेलू कामों का समाजीकरण किया गया। बड़े-बड़े शिशुघर, भोजनालय, लॉण्ड्रियाँ खोली गयीं, ताकि घरेलू कामों की गुलामी से स्त्रियाँ मुक्त हो सकें।

महिलाओं को सोवियत सरकार में महत्वपूर्ण पद भी दिये गये। सोवियतों में भी महिलाओं की भागीदारी रहती थी। कृषि उद्योग में तो महिलाएँ अग्रणी भूमिका में रहती थीं, बड़े-बड़े हार्वेस्टर और ट्रैक्टर तक महिलाएँ चलाती थीं। एक तरह से कृषि उद्योग उन्हीं महिलाओं पर निर्भर था।

आँकड़ों की रौशनी में इस बात को अच्छी तरह समझा जा सकता है कि स्त्री मुक्ति की दिशा में कितने कार्य किये गये। 1929 तक स्त्री कामगारों की संख्या 30 लाख से बढ़कर 1934 तक 70 लाख हो गयी। 1929 में कामगारों की संख्या 25% से बढ़कर 1934 तक 45% हो गयी। शिक्षा के क्षेत्र में इनकी भागीदारी 1930 के दशक तक 35% से बढ़कर 72% हो गयी।

बोल्शेविक पार्टी ने 1929 में जेनोत्देल का गठन किया, जिसका मुख्य उद्देश्य महिलाओं को समाजवाद के करीब लाना था। व्यावहारिक कामों के ज़रिये स्त्रियों को समाजवाद की शिक्षा देना था। इस संगठन ने भी महिलाओं के बीच समाजवाद का प्रचार-प्रसार करने में महती भूमिका निभायी। जेनोत्देल पूरी तरह स्त्रियों द्वारा संचालित संगठन था जिसमें अच्छी-खासी संख्या में ग़ैर-पार्टी स्त्रियाँ भी थीं।

रूसी क्रान्ति के प्रयोग ने सिद्ध करके दिखाया कि अगर स्त्रियों को घर की चारदीवारी से निकलने का मौक़ा दिया जाये, उन्हें निर्बन्ध किया जाये तो कैसे-कैसे अविश्वसनीय कारनामे कर सकती हैं। स्त्रियों ने न सिर्फ़ क्रान्ति के संघर्ष में महती भूमिका निभायी, बल्कि समाजवादी निर्माण के कार्यों के विभिन्न मोर्चों पर सक्रिय रहीं।

हालाँकि स्तालिन काल में कुछ ग़लतियाँ भी हुईं, जैसे जेनोत्देल को ख़त्म कर दिया गया। पूँजीवादी परिवारों के बरक्स समाजवादी परिवारों को महिमामण्डित करते हुए तलाक की प्रक्रिया को कठिन बना दिया गया। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद महिलाओं को बच्चे पैदा करने पर पुरस्कृत किया जाने लगा। ऐसी कई और भी ग़लतियाँ हुईं।

लेकिन फिर भी यह नहीं भूलना चाहिए कि रूस में हुआ समाजवादी प्रयोग अपनी तरह का पहला प्रयोग था। लेकिन सिर्फ़ चार दशकों के समय में इसने सिद्ध कर दिया की पूँजीवादी दायरे के भीतर स्त्री-मुक्ति सम्भव नहीं है, यह सिर्फ़ समाजवाद में ही सम्भव है।

उन्होंने अपनी बात का अन्त एंगेल्स द्वारा मार्क्स से बातचीत में कही गयी एक उक्ति से किया कि आगे आने वाले काल में एक नयी मानवता का जन्म होगा, तब पुरुषों की एक ऐसी पीढ़ी आयेगी, जिसे यह मालूम भी नहीं होगा कि धन या किसी दूसरी शक्ति से स्त्री को ख़रीदा जा सकता है, तब स्त्रियों को भी यह नहीं मालूम होगा कि सच्चे प्रेम के अलावा किसी और कारण से दूसरे पुरुष को समर्पित किया जा सकता है।

इस व्याख्यान में पटना के कई लेखक, कवि, बुद्धिजीवी, नागरिक व छात्र उपस्थित रहे। जिनमें प्रो. अरुण कमल, प्रो. तरुण कुमार, पार्थ सरकार , सतीश, अरविन्द सिन्हा, अजय सिन्हा, निवेदिता शकील ,मीरा दत्त, प्रीति सिन्हा, जीतेन्द्र राठौर, शेखर, पुष्पेन्द्र, नन्दकिशोर सिंह आदि प्रमुख रहे।

— बिगुल संवाददाता

कार्ल मार्क्स की 199वीं जन्मतिथि (5 मई) और 'पूँजी' के प्रकाशन की 150वीं वर्षगाँठ के अवसर पर

'पूँजी' के साहित्यिक मूल्य के बारे में

कार्ल मार्क्स लिखित 'पूँजी' एक महाग्रंथ है, जो राजनीतिक अर्थशास्त्र के साथ ही आर्थिक विचारों के (और केवल आर्थिक विचारों का ही नहीं) इतिहास की भी एक पुस्तक है, एक महान दार्शनिक गौरव-ग्रंथ है और साथ ही, एक महाकाव्यात्मक साहित्यिक कृति भी है। यह मार्क्स के समग्र आत्मिक विकास का और उससमय तक की सम्पूर्ण दार्शनिक-सांस्कृतिक विरासत का जैविक संश्लेषण है। पूँजी की कार्य-प्रणाली के रहस्य के उदघाटन के साथ ही पहली बार इस महाकाय रचना में, अपने अनिवार्य विघटन की दिशा में पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली की प्रगति का तर्क भी प्रकट हुआ।

'पूँजी' ने सम्पूर्ण बुर्जुआ समाज के जीवन के सभी सम्बन्धों और पहलुओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया, और साथ ही, पहली बार अपनी मुक्ति के लिए मज़दूरवर्ग के राजनीतिक संघर्ष और विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन की रणनीति और रणकौशल के लिए एक दृढ़ और व्यापक वैज्ञानिक आधार प्रदान किया।

'पूँजी' में मार्क्स अपने को ललित साहित्य का श्रेष्ठ सर्जक सिद्ध करते हैं। रचना, संतुलन और प्रतिपादन के यथातथ्य तर्क की दृष्टि से यह एक "कलात्मक समष्टि" है। शैली और साहित्यिक मूल्य की दृष्टि से भी यह एक श्रेष्ठ कृति है जो गहन सौंदर्यबोधी आनंद की अनुभूति देती है। व्यंग्य और परिहास की जो विरल प्रतिभा मार्क्स के 'पोलेमिकल' और अखबारी लेखों में अपनी छटा बिखेरती थी, वह 'पूँजी' में और उभरकर सामने आई। मूल्य के रूपों, माल-अंधपूजा और पूंजीवादी संचय के सार्विक नियम को स्पृहणीय स्पष्टता और जीवन्तता के साथ विश्लेषित और प्रतिपादित करते हुए मार्क्स ने अपने अनूठे व्यंग्य और परिहास से विषय को बेहद मज़ेदार बना दिया।

दर्शन के क्षेत्र में मार्क्स ने हेगेल, काण्ट, फ़िख्ते, फायरबाख आदि का जितना गहन अध्ययन किया था, और बुर्जुआ राजनीतिक अर्थशास्त्र के सभी पुरोधाओं की कृतियों को जिसतरह चाट डाला था; उतनी ही रुचि और अध्यवसाय के साथ उन्होने प्राचीन ग्रीक साहित्यिक गौरव-ग्रन्थों से लेकर अपने समकालीन महान लेखकों तक का अध्ययन किया था। लेखन के क्षेत्र में शेक्सपियर, सर्वांतेस, दांते, लेसिंग, गोएठे और हाइनरिख हाइने मार्क्स के गुरु थे, लेकिन मात्र एक आज्ञाकारी शिष्य होने के बजाय कई मायनों में वे अपने इन महान गुरुओं से भी आगे गए। बोधों से सिद्धान्त बनाने, साहित्यिक बिंबों को गहन विचार से अनुप्राणित कर देने और स्वयं वाक्य की संरचना में ही द्वंद्ववाद का तनाव प्रकट कर देने की कलाओं में वे दुनिया के महानतम लेखकों से भी अधिक पारंगत प्रतीत होते हैं। वह पहले "एक ओर", फिर "दूसरी ओर" की बात करते हुए अंत में संश्लेषण की विधि नहीं अपनाते, बल्कि, एक ही वाक्य में, और एक ही बिम्ब में विभिन्न पहलुओं का टकराव और उनका संश्लेषण-- दोनों अभिव्यक्त कर देते हैं। वह कर्ता और विधेय को प्रतिध्रुवों के रूप में एक साथ लाते हैं, और फिर उन्हे एक-दूसरे के साथ टकराने और तुरंत अपने विलोम में बदल जाने के लिए विवश कर देते हैं।

अपने चढ़ाव-उतार तथा विकास और निषेध की स्वाभाविक प्रक्रिया में सामाजिक परिघटनाओं के सारतत्व को मार्क्स ने वाक्यों में यूं बाँधा कि स्वयं "जीवन के द्वंद्ववाद" ने अवधारणाओं के द्वंद्ववाद में सम्पूर्ण एवं सारगर्भित अभिव्यक्ति पा ली। 'पूँजी' में कई जगह वाक्य विचारों की तेजी से खुलती हुई कमानी के समान प्रतीत होते हैं और ये विशाल वाक्य बिम्ब और विचार के टकराव से जनित इतने घनीभूत सारतत्व से भरे हुए होते हैं कि सूत्रात्मक सूक्ति बन जाते हैं। ऐसी ही बिम्बात्मकता, सूत्रात्मक सारगर्भिता, गहराई और व्यंग्य के साथ मार्क्स जब मानव-चरित्रों का वर्णन करते हैं तो तूलिका के इने-गिने स्पर्शों से गहन मनोवैज्ञानिक और सामाजिक छवि चित्रित करने की उनकी योग्यता पर अनेक उच्च कोटि के लेखकों को ईर्ष्या हो सकती है।

'पूँजी' और मार्क्स की अन्य कृतियों के साहित्यिक मूल्य पर अलग से विशद चर्चा हो सकती है, लेकिन ऐसा अभी तक बहुत कम ही हुआ है। इस दृष्टि से भी जब कुछ अध्ययन होंगे तो इस महान युगपुरुष की सर्जनात्मक प्रयोगशाला के मर्म को समझने की कुछ और नई अंतर्दृष्टियाँ प्राप्त होंगी।

— कविता कृष्णपल्लवी

युवा मार्क्स की कविता

जीवन-लक्ष्य

कठिनाइयों से रीता जीवन
मेरे लिए नहीं,
नहीं, मेरे तूफानी मन को यह स्वीकार नहीं।
मुझे तो चाहिये एक महान ऊँचा लक्ष्य
और उसके लिए उम्र भर संघर्षों का अटूट क्रम।
ओ कला ! तू खोल
मानवता की धरोहर, अपने अमूल्य कोषों के द्वार
मेरे लिए खोल !
अपनी प्रज्ञा और संवेगों के आलिंगन में
अखिल विश्व को बाँध लूँगा मैं!
आओ,
हम बीहड़ और कठिन सुदूर यात्रा पर चलें
आओ, क्योंकि-
छिछला, निरुद्देश्य और लक्ष्यहीन जीवन
हमें स्वीकार नहीं।
हम, ऊँघते कलम घिसते हुए
उत्पीड़न और लाचारी में नहीं जियेंगे।
हम-आकांक्षा, आक्रोश, आवेग, और
अभिमान में जियेंगे !
असली इन्सान की तरह जियेंगे।

बैंक कानून में संशोधन अध्यादेश : हज़ारों करोड़ कर्ज़ लेकर डकार जाने वालों की भरपाई का बोझ उठाने के लिए जनता तैयार रहे

(पेज 16 से आगे)

अब हम इस बढ़ते एनपीए के कारणों पर नज़र डालते हैं। बड़ा मामला होने से पूँजीवादी मीडिया तन्त्र और उसके 'विश्लेषक' भी इसकी चर्चा करने से बच नहीं पाते लेकिन वह इसे भ्रष्टाचार या क्रोनी कैपिटलिज़्म (भ्रष्ट पूँजीवाद, जैसे कोई सच्चा, ईमानदार पूँजीवाद भी होता है!) से पैदा समस्या बताकर इसके मूल कारणों को छिपा जाते हैं और पूँजीवादी व्यवस्था के नियमों के सुधार और भ्रष्ट व्यक्तियों के ख़िलाफ़ जाँच/अभियोग को इसका हल बताते रहते हैं। कुछ हद तक भ्रष्टाचार की इसमें भूमिका है भी। लेकिन वह इसका मूल कारण नहीं। सिर्फ़ सरकारी बैंकों में ही नहीं, मुनाफ़े के लिए चलने वाले आईसीआईसीआई, एक्सिस, यस, आदि निजी बैंकों में भी एनपीए में भारी वृद्धि हुई है। फिर इसका मूल कारण क्या है?

मार्क्स ने पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था के विश्लेषण में दिखाया है कि प्रत्येक पूँजीपति के लिए बाज़ार में अपने हिस्से और मुनाफ़े को बढ़ाने के लिए यह ज़रूरी है कि वह निरन्तर उत्पादक शक्तियों का विकास-विस्तार करें तथा कम लागत पर अधिक उत्पादकता वाले उद्योग लगाते रहें। हर पूँजीपति क्योंकि अपने लिए सोचता है और पूरी अर्थव्यवस्था में बाज़ार में उत्पादित माल की माँग और सभी पूँजीपतियों द्वारा कुल उत्पादन में मेल के लिए योजना नहीं होती इसलिए कुछ समय बाद ही बाज़ार की माँग से ज़्यादा उत्पादन या अतिउत्पादन की स्थिति आ जाती है। ध्यान रहे कि यह समाज की आवश्यकता से अधिक नहीं बल्कि माँग अर्थात समाज में क्रय शक्ति से अधिक उत्पादन की स्थिति है। इस संकट में कुछ पूँजीपतियों का दिवालिया हो जाना एक स्वाभाविक नतीजा होता है। कुछ उद्योगों के इस तरह बन्द हो जाने पर यह प्रक्रिया पुनः जारी होकर फिर कुछ समय बाद इसी तरह फिर से चक्रीय संकट की स्थिति बनती है। लेकिन हाल के दशकों में यह संकट चक्रीय न रहकर निरन्तर चलने वाला संकट बन गया है अर्थात एक संकट से निकलने का प्रयास एक और नये, और गहरे संकट की स्थिति पैदा कर रहा है।

2001-02 के समय में जो आर्थिक संकट का दौर था उसमें पूँजीवादी देशों के केन्द्रीय बैंकों द्वारा ब्याज़ दरों को कम कर पूँजीपतियों को राहत देने की नीति अपनायी गयी थी जिसे सस्ती मुद्रा नीति भी कहा जाता है। इससे जो सस्ता धन क़र्ज़ के रूप में उपलब्ध हुआ उससे ज़मीन-मकान और शेयर-बाण्ड्स जैसी वित्तीय सम्पत्तियों के दामों में भारी वृद्धि द्वारा एक नक़ली सम्पन्नता का माहौल बनाया गया जिससे कुछ समय तक बाज़ार में माँग बढ़ी ख़ास तौर पर किश्तों पर ख़रीदारी द्वारा। पूँजीपतियों को भी ख़ूब सस्ता क़र्ज़ निवेश के लिए मिला और उन्होंने उत्पादक क्षमता में निवेश भी किया। लेकिन कुछ साल बाद ही इससे पैदा हुए तीव्र आर्थिक संकट ने इस माँग को चौपट कर दिया। अभी रिज़र्व बैंक के अनुसार भारतीय उद्योग स्थापित क्षमता के 68-70% पर ही काम कर पा रहे हैं। इसलिए कुछ उद्योगों का दिवालिया होना इसका स्वाभाविक नतीजा है। यही बैंकों के क़र्ज़ों को संकट में डाल रहा है।

पर पूँजीवाद के शुरुआती दौर में उद्योगों को, साथ में बैंकों को भी, दिवालिया होने दिया जाता था। लेकिन एकाधिकारी वित्तीय पूँजी के दौर में ऐसा होने के बजाय शासक वर्ग इसका बोझ भी पहले से ही शोषित मेहनतकश और टटपुँजिया तबके पर डाल कर ख़ुद की पूँजी और मुनाफ़े को सुरक्षित करने के प्रयास में है। इसीलिए 'राष्ट्रहित' में उद्योगों और ख़ास तौर पर बैंकों को मदद करने का माहौल बनाया जा रहा है। इसी का नतीजा है 'असफल होने के लिए ज़्यादा बड़ा' (टू बिग टू फेल) का सिद्धान्त सामने लाया गया है अर्थात कुछ बैंक और उद्योग इतने बड़े हैं कि उनको किसी हालत में भी बन्द होने देना 'राष्ट्रहित' में नहीं है। इस तथाकथित 'सिद्धान्त' की आड़ में सभी पूँजीवादी देशों में इनके घाटे का बोझ ख़र्च में कमी, पेट पर बेल्ट कसने, आदि के नाम पर जनता पर डाला जाता है -- अमीरों के लिए प्रत्यक्ष करों में कटौती, ग़रीबों के लिए अप्रत्यक्ष करों में वृद्धि, शिक्षा-स्वास्थ्य के ख़र्च में कमी, वंचितों-महिलाओं-बच्चों के कल्याण कार्यक्रमों में कटौती, सरकार नियन्त्रित वस्तुओं के मूल्यों में इज़ाफ़ा, रेल-बस भाड़े बढ़ाना, आदि इसके लक्षण हैं जिसके द्वारा मेहनतकश लोगों के ख़ून का आख़िरी क़तरा तक चूसकर पूँजीपतियों के मुनाफ़े में कमी को रोका जा सके। यही इस वक़्त भारत में चल रहा है।

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2017-2019
प्रेषण डाकघर : आर।एम।एस, चारबाग, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 20, प्रत्येक माह

बैंक कानून में संशोधन अध्यादेश : हज़ारों करोड़ कर्ज़ लेकर डकार जाने वालों की भरपाई का बोझ उठाने के लिए जनता तैयार रहे

मुकेश त्यागी

पहले से चल रही चर्चा के मुताबिक़ ही 5 मई को केन्द्र सरकार ने बैंकिंग नियमन क़ानून में संशोधन का अध्यादेश जारी कर दिया। इसका मक़सद बैंकों के भारी मात्रा में बकाया क़र्ज़ों या एनपीए का तेज़ गति से समाधान करना बताया गया है। ऐसे क़र्ज़े इस वक़्त कहीं 6 लाख करोड़ तो कहीं 8 लाख करोड़ रुपये के बताये जाते हैं, लेकिन यह संख्या वास्तव में इससे कहीं ज़्यादा है क्योंकि इसमें बकाया ब्याज़ और बट्टे खाते में डाले जा चुके क़र्ज़ की रक़म सम्मिलित नहीं है। इसमें से 88% से अधिक रक़म बड़े कॉर्पोरेट ने दबाई हुई है। अब बताया जा रहा है कि इनमें से 50 सबसे बड़े क़र्ज़दारों के मामले हल करना सरकार की प्राथमिकता है। इस लेख में हम इस अध्यादेश को लाने के मक़सद, इसके असर और कार्य-पद्धति के साथ ही बैंकों के एनपीए के बढ़ने के मूल कारणों, शासकों द्वारा उसके समाधान के उपायों और मेहनतकश लोगों के जीवन पर उसके असर की भी चर्चा करेंगे।

कितना है डूबा क़र्ज़?

इस न चुकाये गये बकाया क़र्ज़ की असली रक़म समझने के लिए हमें इस वर्ष के बजट से पहले प्रस्तुत आर्थिक सर्वे पर एक नज़र डालनी होगी। सर्वे में बताया गया था कि 'तथ्य यह है कि बकाया क़र्ज़ की बड़ी मात्रा बहुत थोड़े क़र्ज़दारों के पास है। मात्र 50 कम्पनियों के पास इसका 71% है जिनमें से हरेक के पास औसतन 20 हज़ार करोड़ का बकाया है, जिसमें से भी सबसे बड़ी 10 कम्पनियों में प्रत्येक के पास औसतन 40 हज़ार करोड़ रुपये बकाया हैं।' अर्थात सबसे ज़्यादा चर्चा वाला विजय माल्या तो नौ हज़ार करोड़ के साथ छुटभैया चोर ही है! इस तरह हिसाब लगाया जाये तो इन 50 बड़े क़र्ज़दारों के पास ही 10 लाख करोड़ का बकाया है जो कुल रक़म का सिर्फ़ 71% हिस्सा है। मतलब कुल बकाया न चुकाये गये क़र्ज़ की रक़म 14 लाख करोड़ तक जा पहुँचती है!

अध्यादेश का मक़सद

इस अध्यादेश का मक़सद भी आर्थिक सर्वे से ही पता चल जाता है। इसमें आगे कहा गया था कि 'साथ ही कई अहम कारणों की वजह से इन बड़े क़र्ज़दारों से वसूली करना बड़ा मुश्किल है!' तो फिर क्या करना चाहिए? बीमारी का इलाज भी यहाँ ही बता दिया गया था, 'शीर्ष 100 क़र्ज़दारों में से 33 पर बकाया रक़म को आधा करना होगा, 10 का बकाया 3 चौथाई तक कम करना होगा और शेष 57 का बकाया 3 चौथाई से भी ज़्यादा घटाना होगा।' इस बात की वजह एक उदाहरण से समझ सकते हैं - भूषण स्टील नाम की कम्पनी, जो पहले भी एक बार फ्रॉड कर चुकी थी, को बैंकों ने जमकर क़र्ज़ दिया जिसकी रक़म अब 46 हज़ार करोड़ है लेकिन इसकी बाज़ार क़ीमत अब सिर्फ़ 2 हज़ार करोड़ है। ऐसे कई उदाहरण हैं।

लेकिन समस्या थी कि यह कम करने का काम किया कैसे जाये? वह उपाय इस अध्यादेश द्वारा किया गया है। संशोधन द्वारा क़ानून में यह बात जोड़ी गयी है कि अब सरकार या रिज़र्व बैंक बैंकों को निर्देश जारी कर सकेंगे कि वे बकाया क़र्ज़ के मामले को जल्दी, निश्चित समय सीमा के अन्तर्गत सुलझाएँ। इस काम का निर्देशन और पड़ताल रिज़र्व बैंक द्वारा बनाई समिति करेगी जिसे बैंक रिपोर्ट करेंगे। इसकी ज़रूरत क्यों पड़ी? बताया जा रहा है कि यूनाइटेड बैंक, सिण्डिकेट बैंक तथा आईडीबीआई बैंक के प्रबन्धकों पर मुक़दमे और गिरफ़्तारी के बाद सरकारी बैंकों के शीर्ष प्रबन्धक भ्रष्टाचार के मामलों से बचने के लिए क़र्ज़दारों से बात करने और फ़ैसला लेने में हिचक रहे थे। अब सरकार या रिज़र्व बैंक के निर्देश से फ़ैसला लेने में उन्हें डर नहीं रहेगा। वास्तव में क़र्ज़ का मामला कैसे सुलझाया जायेगा यह आज के अध्यादेश का हिस्सा नहीं है लेकिन इस काम में 'भ्रष्टाचार' के मामलों का डर अपने आप में ही काफ़ी है यह बताने के लिए कि क्या किया जाने वाला है! साथ ही सरकारी और बैंक अफ़सरों के पहले के बयान भी इस बारे में काफ़ी कुछ बताते हैं। इकनोमिक टाइम्स की एक रिपोर्ट के अनुसार स्टेट बैंक ऑफ़ इण्डिया ने इस अध्यादेश के लिए सरकार से बहुत मिन्नत-आरजू की थी और इसकी प्रधान अरुन्धति भट्टाचार्य ने अब कहा है कि इस क़ानून से 'पारदर्शिता' बढ़ेगी तथा बकाया क़र्ज़ों से निपटने के मामलों में बैंकों का भरोसा बढ़ेगा!

ख़ैर भारतीय बैंकों के प्रबन्धकों से तो असली बात कहने की अपेक्षा करना ही ग़लत है, लेकिन इस अध्यादेश के बारे में पूछे जाने पर होंगकोंग एण्ड शंघाई बैंक के भारत के मुखिया स्टुअर्ट मिल्नी ने यह कहा, 'बैंकिंग उद्योग का मूल सवाल है कि (इन क़र्ज़ों को कम करने से होने वाला) घाटा सहन करने के लिए पूँजी कहाँ से आयेगी। भारतीय बैंकों के प्रबन्धक बहुत चतुर हैं, उन्हें अपने होने वाले घाटे का पूरा अन्दाज़ा है। हम यहाँ 90 अरब डॉलर के घाटे की बात कर रहे हैं जो एक विशालकाय संख्या है। रिज़र्व बैंक को वह अधिकार दिया गया है जो उसके पास पहले भी था अर्थात बैंक को क़र्ज़दार पर दिवालिया क़ानून को लागू करने का निर्देश देना। पर समस्या यह है कि बैंकों के पास 'मुण्डन' (प्रबन्धकीय भाषा में इसे घाटा नहीं बल्कि हेअरकट या मुण्डन कहा जा रहा है!) के लिए पूँजी कहाँ से आये; और इसका कोई सरल जवाब नहीं, ज़बरदस्त घाटा उठाना ही पड़ेगा।'

तो सच सामने है कि बैंकों को कहा जा रहा है कि वे घाटा उठाकर इन बकायादार कम्पनियों को राहत दें। यह कैसे किया जायेगा? पहली बात तो यह कि नये नियम के अन्तर्गत बैंक को एक तय वक़्त में क़र्ज़दार के साथ समझौता करना होगा अर्थात दबाव बैंक के ऊपर है क़र्ज़दार पर नहीं! साफ़ है कि बैंक को काग़ज़ों में थोड़ा-बहुत मोलभाव दिखा कर क़र्ज़दार द्वारा प्रस्तावित रक़म पर समझौता करने का दबाव पड़ने वाला है; जैसे विजय माल्या 6 हज़ार करोड़ रुपये का ऑफ़र दे रहा है तो मूल-सूद का क़रीब इतना ही रुपया बैंक को छोड़ देना पड़ेगा। इसे प्रबन्धकीय भाषा में 'हेयरकट' या मुण्डन कहा जा रहा है। बैंकों को कहा गया है कि मामला निपटाने के लिए वह 'मुण्डन' को तैयार रहें। अगर बैंक तय समय में मामला नहीं निपटाते तो नये क़ानून में रिज़र्व बैंक या सरकार उनको निर्देश जारी कर सकेगी कि इतने प्रतिशत 'मुण्डन' करवा लें। असल में बैंक प्रबन्धन को इससे कोई ऐतराज़ भी नहीं, उन्हें सिर्फ़ यह भरोसा चाहिए था कि उन्होंने यह क़र्ज़दार से रिश्वत लेकर नहीं बल्कि रिज़र्व बैंक या सरकार के निर्देश पर किया। लेकिन इसमें भी अगर कोई बैंक राजी न हो तो यह भी प्रावधान कर दिया गया है कि कुल क़र्ज़ के 60% वाले बैंकों का फ़ैसला बाक़ी बैंकों को भी मानना होगा।

अध्यादेश का प्रभाव

अध्यादेश का असर भी तुरन्त शुरू हो गया। मिन्ट की 8 मई की रिपोर्ट के अनुसार एसबीआई के नेतृत्व में बैंक जल्दी ही एस्सार स्टील (45 हज़ार करोड़) और भूषण स्टील के क़र्ज़ के पुनर्गठन का फ़ैसला लेने के लिए तैयार हैं जिसमें ब्याज़ दर घटाना, किश्तों के लिए और समय देना, क़र्ज़ को कम ब्याज़ वाले बाण्ड्स में बदलना शामिल है। कुछ और बड़ी कम्पनियाँ जो इस क़तार में हो सकती हैं -- वीडियोकॉन (33 हज़ार करोड़), एस्सार पॉवर (11 हज़ार करोड़), जयप्रकाश समूह की 3 कम्पनियाँ (कुल 48 हज़ार करोड़), नवीन जिन्दल की जिन्दल स्टील (46 हज़ार करोड़) और अनिल अम्बानी की रिलायंस कम्युनिकेशन (42 हज़ार करोड़), आदि।

दूसरा तरीक़ा होगा कि बैंक क़र्ज़दार कम्पनी की सम्पत्ति को बेचे। पर पहले तो इतने लम्बे समय में कम्पनी के मालिक उसकी क़ीमती सम्पत्ति को कुशलता से चोरी कर अपने दूसरे नामों पर ट्रांसफ़र करा चुके होते हैं, इसलिए ज़्यादा कुछ मिलता नहीं है जैसे भूषण स्टील का मामला है। उस पर निश्चित वक़्त की हद लगा देने से और भी कम क़ीमत मिलेगी। इस स्थिति में बहुत सी निजी वित्तीय कम्पनियाँ इन सम्पत्तियों को औने-पौने दाम ख़रीद कर भारी मुनाफ़ा कमायेंगी और बैंकों को घाटा सहना पड़ेगा। यह काम पहले ही चल रहा है, पर अब और तेज़ होगा। इसके लिए कई वित्तीय पूँजीपति इस काम के लिए कम्पनियाँ पहले ही बनाकर तैयार बैठे हैं जिन्हें एसेट रिकवरी कम्पनी (एआरसी) कहा जाता है। यह भी हो सकता है कि क़र्ज़दार ख़ुद ही दूसरे नाम से अपनी सम्पत्ति को इन गिरी हुई क़ीमत पर ख़रीदें जबकि इनकी ऊँची क़ीमत नाम पर उन्होंने पहले बड़ा क़र्ज़ लिया था। इकोनॉमिक टाइम्स ने 14 मार्च को एक रिपोर्ट में कहा कि सरकारी बैंकों ने मार्च के महीने में ही 20 हज़ार करोड़ के क़र्ज़ को बिक्री पर लगाया है, लेकिन इसमें से सिर्फ़ 10% के ही बिकने की उम्मीद है क्योंकि इन क़र्ज़ों के लिए मिलने वाला बाज़ार भाव बहुत कम, अक्सर 50% ही रहता है और फ़िलहाल स्थिति विकट है, क्योंकि प्रबन्धक बाद में सरकारी एजेंसियों द्वारा जाँच के डर से कम क़ीमत पर बिक्री का फ़ैसला लेने के लिए तैयार नहीं हैं। लेकिन अभी तक डरे जो बैंक प्रबन्धक इसमें हिचक रहे थे, उनका वह डर अब अभयदान मिलने के बाद न रहेगा।

एआरसी कैसे काम करती है। इसका एक उदाहरण पिछले दिनों हुआ क़र्ज़ का एक सौदा है। भारती शिपयार्ड का 10 हज़ार करोड़ का क़र्ज़ एनपीए हुआ। अब यह क़र्ज़ 3 हज़ार करोड़ में एडेलवीस एआरसी को बेच दिया गया जिसे शुरू में सिर्फ़ 450 करोड़ देने हैं, बाक़ी किश्तों में। कम्पनी का नाम बदल दिया गया है और 7 हज़ार करोड़ सर से उतरे तो यह मुनाफ़ा भी कमाने लगेगी! कम्पनी की क़ीमत बढ़ेगी, तो पूरी कम्पनी या बढ़े दाम पर शेयर बेचकर दाँव लगाने वाले वित्तीय पूँजीपति तगड़ा मुनाफ़ा कमायेंगे। पर बैंक का 7 हज़ार करोड़ का बट्टे खाते में जाने वाला नुक़सान? वह तो बस 'मुण्डन' कहलायेगा, पर इस तरह 10 हज़ार करोड़ एनपीए तो कम हो गया न!

तीसरा तरीक़ा, सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों के द्वारा इन सम्पत्तियों को ख़रीदा जाना। पता चलेगा कि बेकार, सड़-गल चुकी इकाइयाँ महँगे दाम में इनके गले बाँध दी जायेंगी। अध्यादेश जारी होते ही ऐसी ख़बरें भी आनी शुरू हो गयी हैं। बिज़नेस स्टैण्डर्ड की 7 मई की ख़बर के अनुसार -- 'सार्वजनिक क्षेत्र की स्टील उत्पादक कम्पनी सेल ने संकेत दिये हैं कि अगर इस्पात क्षेत्र की फँसी हुई सम्पत्तियों की पेशकश की जाती है तो वह उसे लेने की पहल कर सकती है। अगर फँसी हुई सम्पत्तियों की नीलामी की जाती है तो सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक सार्वजनिक उपक्रमों में पहले सम्पर्क कर सकते हैं। माना जा रहा है कि बैंक रणनीतिक क़र्ज़ पुनर्गठन में शामिल कम से कम दो स्टील कम्पनियों का प्रबन्धन सौंपने के विकल्प तलाश रहे हैं। लेकिन इस दिशा में अब तक बात नहीं बन पायी है।' इसी का एक और रूप अक्टूबर 2016 में सबसे बड़े क़र्ज़दारों में से एक एस्सार के मामले में देखने को मिला था। इसमें पहले सरकारी कम्पनी ओएनजीसी ने रूसी कम्पनी रोसनेफ़्ट में निवेश किया, फिर उस पैसे से रोसनेफ़्ट ने एस्सार को ख़रीद लिया। एस्सार का क़र्ज़ ख़त्म, पर जमा करने वाली असल में एक सरकारी कम्पनी थी।

एक और तरीक़ा - क़र्ज़ को इक्विटी या शेयर में बदलना एक चतुराई भरा तरीक़ा है। इसमें कहा जायेगा कि क़र्ज़ लेने वाली कम्पनी के मालिकाने का एक बड़ा हिस्सा बैंक के नाम कर दिया गया। पर असल खेल यह होगा कि शेयर किस क़ीमत पर ट्रांसफ़र हुए। शेयर बाज़ार में तो हम जानते ही हैं कि कैसे क़ीमतें उठायी और गिरायी जाती हैं। पता यह चलेगा कि बैंकों के नाम ये शेयर वास्तविक से कहीं ऊँची क़ीमत पर ट्रांसफ़र करके क़र्ज़ चुकता कर दिया गया और बाद में क़ीमत गिरने के बाद बहुत कम वसूली हुई।

ऊपर हमने एसबीआई की अध्यक्ष द्वारा इस अध्यादेश की प्रशंसा का ज़िक्र किया था। उनकी प्रशंसा वाजिब भी है क्योंकि सिर्फ़ उनके ही बैंक ने 2017 के बाद से 4 लाख करोड़ के क़र्ज़ बट्टे खाते में डाले हैं और अभी और बहुत से डालने हैं। लेकिन अब वह अकेली नहीं हैं, उन्हें कोई डरने का कारण नहीं है क्योंकि उन्हें अब रिज़र्व बैंक और सरकार का वरदहस्त हासिल है। यही अरुन्धति भट्टाचार्य थीं जिन्होंने किसानों के कुछ हज़ार की क़र्ज़ माफ़ी पर क़र्ज़दारों के क़र्ज़ चुकता करने का 'अनुशासन' ख़राब होने की भारी चिन्ता ज़ाहिर की थी, लेकिन हज़ारों करोड़ के क़र्ज़दारों को छूट मिलने में इन्हें कोई चिन्ता की बात नज़र नहीं आती! उन्होंने फिर से टीवी पर इंटरव्यू दिये हैं जिसमें वह कहती हैं कि इनमें बिरले लोग ही जानबूझकर क़र्ज़ नहीं चुकाते, बल्कि अर्थव्यवस्था के कारणों से इसके लिए मजबूर हो जाते हैं। इसलिए इन्हें राहत देना 'राष्ट्रहित' में है।

बैंकों के घाटे का बोझ कौन उठायेगा?

कुल मिलाकर, इन बड़े कॉर्पोरेट क़र्ज़दारों को आसानी से इन क़र्ज़ों के जाल से छुटकारा दिलाने के नाम पर सरकारी बैंक और कम्पनियाँ इस क़र्ज़ का एक बड़ा हिस्सा अपने सर पर ले लेंगी। लेकिन यह घाटा आख़िर में बढ़ते टैक्सों और क़ीमतों के द्वारा देश की ग़रीब मेहनतकश जनता से ही वसूल किया जायेगा। जबकि क़र्ज़ मुक्त कॉर्पोरेट फिर से नये क़र्ज़ लेने (और फिर हज़म कर लेने!) के पात्र बन जायेंगे। पूरी तरह सड़ती और परजीवी पूँजीवादी व्यवस्था में यही कहानी बार-बार दोहरायी जाती है। बैंकों को जो घाटा होगा उसकी भरपाई आख़िर हम लोग ही करेंगे, बढ़ते बैंक चार्ज, घटते डिपाजिट ब्याज़ से सिर्फ़ बैंक ग्राहक ही नहीं, बल्कि बैंक में जमा करने लायक़ कमाई न करने वाले भी क्योंकि सरकार बैंक को और पूँजी देगी। तो आम मेहनतकश लोग और टैक्स दें, बढ़े रेल भाड़े दें, बढ़ी क़ीमतें दें, 'राष्ट्रवादी' बनें! सरकार पहले ही बैंकों को देने के लिए 70 हज़ार करोड़ रुपये का प्रावधान कर चुकी है जिसे अरुन्धति भट्टाचार्य ने ऊँट के मुँह में जीरा की संज्ञा दी है।

(पेज 15 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक: सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पाकीय पता: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006